गीता पंच प्रवचन प्रसरणि

(गीता अध्याय तीन पर आधारित)

ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

गीता पंच प्रवचन प्रसरणि

(अध्याय तीन पर आधारित)

ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट नगर,
पिंजौर, हरियाणा
फोन - 0171-266170

प्रकाशक :
दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम,
विराट नगर, पिंजौर (हरियाणा)
फोन : 01733-266170

© लेखकाधीन

संकलन :- स्वयं प्रभा जी परिव्राजिका
सम्पादन :- ब्रह्मऋता परिव्राजिका

शब्द संयोजन :- *अमित शर्मा*

प्रथम संस्करण :- 7 जुलाई 2009 (विक्रमी सम्वत् 2066)
आषाढ़ शुक्ल पक्ष -व्यास पूर्णिमा

प्रतियाँ :- 1100

मूल्य :- 40/-

मुद्रक :-दी प्रैस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

दो शब्द

गीता पंच प्रवचन प्रसरणि पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित गुरुदेव ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा जी महाराज की साधना स्थली उदयपुर (राजस्थान) में दिये गए पाँच प्रवचनों का संग्रह है। प्रस्तुत पुस्तिका गागर में सागर भरने की लकोक्ति को चरितार्थ करती है क्योंकि इसमें गुरुदेव ने सरल भाषा में सुन्दर–सुखमय जीवन जीने के उन रहस्यों का उद्‌घाटन किया है जो वर्तमान के अविद्या एवं अभाव ग्रसित जीवों को नई चेतना एवं नई दिशा प्रदान करेगा। वर्तमान के वैज्ञानिक युग में तथाकथित प्रबुद्ध समाज कर्मकाण्ड एवं भोग लिप्सा के साधनों द्वारा ऐश्वर्य का धनी होना चाहता है जो सर्वथा असम्भव है। पूज्य गुरुदेव ने गीतोक्त बुद्धियोग के आधार पर प्रतिष्ठित धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की जो मीमांसा इस ग्रन्थ में की है वह भी गीता की तरह अद्‌भुत एवं अपूर्व है। उनका मानना है कि धर्म, ज्ञान और वैराग्य युक्त व्यक्ति ही ऐश्वर्य का स्वामी होता है। भोग की लिप्सा ऐश्वर्य की स्थिरता एवं समृद्धि में बाधक है। जैसे गोस्वामी जी ने श्रीरामचरित मानस में बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है –

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं।
तिमि सुख सम्पति बिनहि बुलाएँ। धरमसील पहि जाहिं सुभाएँ॥

(रा० 1/294–2,3)

इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि सुख–संपत्ति का वास वा ऐश्वर्य की सुरक्षा धर्मशील के चरणों में ही होती है।

इस पुस्तक में पू० गुरुदेव ने इस तथ्य पर बार–2 बल दिया है कि धर्म विध्यात्मक नहीं बोधात्मक है। धर्म का आधार बुद्धि है और वह देश, काल, परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। किसी परिस्थिति में आज्ञा पालन धर्म है तो अन्य में आज्ञा उल्घंन भी धर्म हो सकता है यदि उसमें जनहित की भावना निहित है इसलिए धर्म के सही स्वरूप को समझते हुए ज्ञान–वैराग्य से युक्त हो ऐश्वर्य की प्राप्ति में ही जीवन की कृत्‌कृत्यता यही इस लघु पुस्तिका के माध्यम से पूज्य गुरुदेव का मानव–मात्र के लिए सन्देश है। विश्वास है सुधी पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक का संकलन हमारी प्रिय दीदी स्वयं प्रभा जी परिव्राजिका द्वारा बड़े कठोर परिश्रम से किया गया है। मैं उनके इस सोहार्द पूर्ण सहयोग के लिए उन्हें प्रणाम करते हुए भविष्य में भी ऐसी ही अपेक्षा करती हूँ।

इन प्रवचनों को बाँध कर सुन्दर पुस्तक का रूप देने में प्रिय अमित शर्मा ने जो परिश्रम किया है उसके लिए उसे अनन्त प्यार एवं आशीर्वाद। अन्त में अपने गुरुदेव का स्मरण करते हुए व्यास पूर्णिमा के शुभ अवसर पर उन्हीं के श्रीचरणों में यह पुष्प समर्पित है।

– ब्रह्मऋता परिव्राजिका
इन्टरनैशनल ब्रह्मर्षि मिशन
शाखा, अबोहर

दिनांक : 7–7–2009

गीता की अनुपमता

मेरी प्रिय आत्माओ !

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभकामना। कई दिनों से यहां प्रात:काल गीता तीसरे अध्याय के आखिरी श्लोकों की व्याख्या समझाई जा रही है। आज से सायंकालीन प्रोग्राम भी प्रारम्भ होने जा रहा है। इसमें आप सभी को गीता का जो महत्वपूर्ण सन्देश है, वह संक्षेप में समझाया जाएगा। यद्यपि गीता, महाभारत जो विशाल ऐतिहासिक साहित्य है, उसके भीष्म पर्व में धृतराष्ट्र के जिज्ञासा व्यक्त करने पर संजय के द्वारा युद्ध के प्रारम्भ में होने वाली घटनाओं के संदर्भ में विवेचित विषय है किन्तु उसको केवल महाभारत के संदर्भ में देखना उचित नहीं। महाभारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वह परमात्मा श्रीमन्नारायण अपने नित्य अंशभूत नर के साथ इस धराधाम पर धर्म प्रतिष्ठार्थ अवतरित हुए, नारायण स्वयं श्रीकृष्ण के रूप में और उनके नित्य अंश नर अर्जुन के

रूप में। महाभारत में इन दोनों महापुरुषों की अमित महिमा का वर्णन प्राप्त होता है। भगवान् शंकर के द्वारा, इन्द्रदेव के द्वारा, सूर्य देव के द्वारा, यक्षेश्वर कुबेर के द्वारा तथा नारद आदि महर्षियों के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन की महिमा का अमित ज्ञान हमें महाभारत में उपलब्ध होता है। सारांश यह है कि नर को माध्यम बनाकर के नारायण ने मानव-मात्र के लिए परम कल्याण की प्राप्ति का जो संदेश प्रदान किया है, उसी का संकलन यह भगवद्गीता है।

महाभारत में अर्जुन की यदि भूमिका आप देखें तो अर्जुन जैसे व्यक्तित्व में मोह का होना सर्वथा असंगत है। इसे केवल मनुष्य मात्र के लिए ब्रह्मविद्या और योग शास्त्र के उपदेश की भूमिका के रूप में देखना ही उचित होगा। ईश्वरीय विधान दिव्य ज्ञान के अवतरण के लिए नर को माध्यम बनाता है और नारायण द्वारा मानव मात्र के कल्याण के लिए जीवन विधान की व्यवस्था का दिव्य संदेश प्रदान किया जाता है। यह दैवी प्रयोजन है और इस दैवी योजना के माध्यम से यदि आप देखेंगे तो गीता के यथार्थ रूप को समझ पाएंगे। केवल अर्जुन के मोह को दूर करने के लिए नहीं, अर्जुन का मोह तो दैवी-योजना से निमित्त मात्र बना है, मानव मात्र के मोह को दूर करके उसे सद्धर्म के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करने के लिए परमेश्वर का दिया हुआ यह अनुपम संदेश तब भी उतना ही महत्वपूर्ण था, आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है और युगों तक जब तक मानव इस पृथ्वी पर रहेगा, इसकी उपयोगिता सदा बनी रहेगी। इसलिए यदि इतिहास के संदर्भ में गीता को देखा जाए तो उसकी वह महत्ता समझ में नहीं आती जो कि यथार्थ दृष्टि से गीता के अन्वेषण से उसकी उपयोगिता, उसकी महत्ता, उसकी उपादेयता मानव-मात्र के उत्थान के लिए समझ में आती है इसलिए गीता की पृष्ठभूमि को आप देखिए और समझिए।

परमात्मा को इस दिव्य उपदेश को देने की क्या आवश्यकता

पड़ी ? क्या उससे पूर्व मानव कल्याण के लिए समुचित मार्ग उपस्थित नहीं था, यह प्रश्न होता है ? इसके उत्तर में यह कहना मुझे कोई अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं लगता कि तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए परमात्मा द्वारा मानव-मात्र के लिए जो उचित मार्ग प्रशस्त किया गया था, उसका लोप हो गया था। भगवान् ने स्वयं इस बात को गीता में ही अभिव्यक्त किया है -

स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप॥

(गीता 4/2)

मेरे द्वारा दिया गया मानव को सर्वतोमुखी और पूर्णत्व की प्रतिष्ठा में जो प्रशस्त मार्ग था, वह काल पाकर के लुप्तप्राय हो गया, इसलिए हे अर्जुन! मैं तुम्हें माध्यम बनाकर के पुनः मानव-मात्र के लिए उस दिव्य ज्ञान का, दिव्य योग का संदेश प्रदान कर रहा हूँ। गीता की भूमिका को देखते हुए और भी एक बात समझिए आप। वैदिक विज्ञान के मुख्य तीन क्षेत्र बताए गए हैं - कर्म, उपासना और ज्ञान। उपासना का समावेश कुछ विद्वानों ने कर्म में कर दिया है और कुछ ने ज्ञान की साधना में। तत्कालीन समाज की स्थिति को देखते हुए भगवान् व्यासदेव ने वेदान्त के सिद्धान्तों को अपने दर्शन में आबद्ध किया जिसे उत्तर मीमांसा के नाम से जाना जाता है। उन्हीं के प्रिय शिष्य जैमिनी ने वेद के कर्मकाण्डिक सिद्धान्तों को अपने पूर्व मीमांसा में आबद्ध किया और मानव मात्र के लिए परम प्राप्तव्य के रूप में स्वर्ग की प्रतिष्ठा की। ये दोनों आचार्य, दोनों महर्षि उस समय विद्यमान थे जिस समय भगवान् ने गीता का प्रवचन किया लेकिन इन दोनों की जो व्याख्या और वैदिक सिद्धान्त की मीमांसा के रूप में पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ थे, उनमें वैदिक सिद्धान्त का वह मूल सन्देश वा परमात्मा का आदि में दिया गया मानव कल्याण के लिए दिव्य सन्देश निहित है, ऐसा भगवान् ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि सृष्टि के आदि में जो मैंने विवस्वान् को, विवस्वान् ने अपने पुत्र मनु को,

मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को दिव्य जीवन का संदेश दिया था वह वर्तमान में नष्टप्राय: हो गया है।

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥

(गीता 4 /3)

यह उत्तम रहस्य मैं तुम्हें समझा रहा हूँ क्योंकि तू मेरा भक्त है और मेरा मित्र है। यह उत्तम रहस्य मानव मात्र के लिए है, केवल अर्जुन के लिए नहीं है, ऐसा भगवान् ने स्वयं कहा है।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवा:।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तोमुच्यन्तेतेऽपिकर्मभि:॥

(गीता 3 /31)

अनेक स्थानों पर भगवान् ने आगे उस दिव्य सन्देश को मानव मात्र के लिए उपयोगी घोषित किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि भगवान् का दिया हुआ वह दिव्य सन्देश तत्कालीन समाज में प्रचलित नहीं था। स्वयं प्रभु कहते हैं कि वह नष्टप्राय: हो गया इसलिए वैदिक विज्ञान के आधार पर प्रतिपादित पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा में जिस सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है उसी का उल्लेख भगवान् ने किया है, यह युक्ति विरुद्ध है और अयथार्थ है। गीता का कर्म विज्ञान पूर्व मीमांसा का कर्म नहीं है और गीता में जिस तत्त्व का विवेचन किया गया है वह उत्तर मीमांसा का प्रतिपाद्य विषय नहीं है। यदि वही होता तो गीता के उपदेश की आवश्यकता ही व्यर्थ हो जाती, निरर्थक हो जाती, प्रयोजनशून्य हो जाती। इसलिए मैं आप लोगों से यह निवेदन करना चाहता हूँ कि तत्कालीन स्थिति को देखते हुए मानव समाज के लिए जिस समुचित मार्ग की आवश्यकता थी, वह मार्ग लुप्तप्राय: हो गया था। दूसरी बात और समझिए, कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि गीता उपनिषदों का सार है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दन:।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

किसी महात्मा के द्वारा लिखा हुआ यह श्लोक गीता की दार्शनिक पृष्ठभूमि को अभिव्यक्त करता है लेकिन उपनिषदों की भूमिकाएं कुछ और हैं, ऐसा कहा जाए तो और भी सुसपष्ट हो जाएगा। उपनिषद् का अध्येता यह जानता है कि उपनिषद् का जिज्ञासु केवल मुमुक्षु ही नहीं शट् साधन सम्पन्न भी है। मुमुक्षा के अंगरूप में जिन साधनों की प्रतिष्ठा की गई है, उन साधनों का अवलम्बन ले करके, संसार का त्याग करके, संसार से विरत हो करके वह सद्गुरु की तलाश में अनेक प्रकार के स्थानों में भ्रमण करता हुआ जब सदगुरु को प्राप्त कर लेता है, उनके सामने अपने प्रश्न को प्रस्तुत करता है और उस प्रश्न के उत्तर में जो उसे गुरु के द्वारा उपदेश प्राप्त होता है, वह औपनिषदिक विद्या कही जाती है। प्रायः उपनिषदें गुरु-शिष्य के संवाद के रूप में हमें उपलब्ध होती हैं और वहां पर ब्रह्म की जिज्ञासा को लेकर के मोक्षाभिलाषी मुमुक्षु साधक तत्त्वद्रष्टा ऋषि के पास जाता है।

गीता की भूमिका उससे बिल्कुल भिन्न है। गीता का जिज्ञासु हाथ में समिधा लेकर गुरु की तलाश करने नहीं गया है जैसा कि उपनिषदों में संकेत है। गीता का जिज्ञासु किसी ऋषि की कुटिया का दरवाज़ा नहीं खटखटा रहा और न तो यह प्रार्थना कर रहा है - "अधी भवो ब्रह्म "। हे भगवान्! मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए। गीता का जिज्ञासु बड़ा विलक्षण जिज्ञासु है। वह हाथ में धनुष बाण लेकर , कमर में तरकस बाँध कर, खड़ग बाँध करके, अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न होकर रथ के ऊपर सवार हो किसी ऋषि के आश्रम में नहीं, रण क्षेत्र में युद्ध करने के लिए खड़ा हुआ है और उस अवस्था में जबकि उसके हृदय में युद्ध के लिए प्रचण्ड उत्साह है। वह अपने सारथि श्रीकृष्ण से कहता है -

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।।

(गीता 1/21)

हे अच्युत! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कर दें। भगवान् उसकी तरफ देखते हैं। दोनों सेनाओं के मध्य में रथ को खड़ा करने का यह अवसर नहीं है, यह अवसर तो युद्ध के लिए शस्त्र प्रहार के लिए है। वह कहता है-

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे॥

(गीता 1/22)

ज़रा मैं देख लूं इस रण रूपी युद्ध में किन-2 के साथ मुझे युद्ध करना है। उन विभूतियों को मैं देखना चाहता हूँ जो -

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥

(गीता 1/23)

जो दुर्बुद्धि धृतराष्ट्र का प्रिय चाह कर युद्ध के लिए यहां आए हुए हैं। मैं उनको देखना चाहता हूँ जिनके साथ मुझे युद्ध करना है। महावीर, महापराक्रमी, नरावतार, अपने बाहुबल से विश्व को विजय करने की क्षमता रखने वाला अर्जुन जिज्ञासु बनकर रणक्षेत्र में नहीं गया है, एक यौद्धा बनकर गया है और वह अपने सारथि से दोनों सेनाओं की स्थिति को देखने के लिए निवेदन कर रहा है कि उसे दोनों सेनाओं के बीच में ले चलो।

भगवान् कृष्ण स्वयं जिसके सारथि हों, जिसमें यह उत्साह हो, साहस हो युद्ध क्षेत्र में, अपने बाहुबल पर जिसे इतना स्वाभिमान हो, यह कोई सामान्य बात नहीं। अर्जुन को भगवान् ले जाकर दोनों सेनाओं के मध्य में खड़ा कर देते हैं और निर्देश करते हैं - अर्जुन! इनके साथ तुम्हें युद्ध करना है। खड़ा कहाँ करते हैं जानते हो?

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।

(गीता 1/25)

जहां भीष्म और द्रोण जो उसके परम वन्दनीय और पूज्य गुरुवर

विराजमान हैं जो अपने-2 रथ के ऊपर, शस्त्र से सुसज्जित हो युद्ध के लिए सन्नद्ध हैं, उनके सामने ले जाकर भगवान् खड़े करते हैं और कहते हैं कि इनके साथ तुम्हें युद्ध करना है। अर्जुन भीष्म और द्रोण को देखकर भयभीत नहीं होता अपितु अपने गुरुजनों के समक्ष सद्भावना से द्रवित हो जाता है। गुरुजनों और प्रियजनों को देखकर उसका सिर चकरा जाता है और वह करुणा से द्रवित हो करके प्रभु से प्रार्थना करते हुए यह कहता है - कृष्ण!

न काङ्क्ष विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥

(गीता 1/32,45)

मैं महान् पाप में प्रवृत्त हो रहा हूँ। राज्य और सुख के लोभ से मैं अपने स्वजनों का ही वध करने के लिए उद्यत हो गया। हमें राज्य नहीं चाहिए, हमें विजय नहीं चाहिए, हमें सुख नहीं चाहिए। यह अर्जुन की भूमिका है। अर्जुन में इस मोह को जागृत करने वाली कौन सी शक्ति है ? कहा, यह जो बगल में रथवान् बनकर के बैठी हुई है। उसकी माया बड़ी विचित्र है। महर्षि कहते हैं -

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

(दुर्गासप्तशती -1/55,56)

तुलसीदास जी उसका अनुवाद करते हैं रामायण में -

जो ग्यानिन्ह कर चित्त अपहरई। बरिआईं बिमोह बस करईं॥

(रा० 7/59-3)

जो बड़े-2 ज्ञानियों के चित्त को हरण करके जबरदस्ती मोह में डाल देती है, वह परमात्मा की माया है और उस मायापति की माया ने ऐसा सुन्दर अवसर ढूँढा है, खोजा है अपने दिव्य ज्ञान को अभिव्यक्त करने के

लिए, जिसकी उपमा आपको दुनिया के किसी साहित्य में नहीं मिलेगी। दुनिया में कोई ऐसा साहित्य नहीं है जिसमें ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र का उपदेश लड़ाई के मैदान में दिया गया हो इसलिए मैं आपको निवेदन कर रहा था कि गीता की भूमिका बिल्कुल विलक्षण है और वह जो महाबली वीर युद्ध के लिए उत्सुक था, वह अपने धनुष बाण को फेंक देता है और अपने प्रभु के सामने प्रार्थना करते हुए कहता है कि प्रभो मेरे लिए उचित नहीं अपने गुरुजनों का वध करना इसलिए मैंने अपने कल्याण का रास्ता निश्चित किया है। भगवान् पूछते हैं, कौन सा रास्ता है ? वह कहता है -

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।

(गीता 2/5)

अपने महान् गुरुजनों का वध करने की अपेक्षा इस लोक में भिक्षा के द्वारा अपना जीवन बिताना, मैं अपने कल्याण का रास्ता समझता हूँ। भगवान् मुस्कराए। अर्जुन सोचता है कि भिक्षा का रास्ता उसके लिए श्रेयस्कर नहीं हो सकता क्योंकि भिक्षाटन करने से स्वधर्म का त्याग, स्वधर्म से च्युति और युद्ध करने से गुरुजनों का वध-ये दोनों ही महान दुःखमय रास्ते हैं। दोनों ही उसके लिए उपयोगी नहीं हैं। न तो गुरुजनों का वध ही उपयोगी है और न भिक्षाटन ही उपयोगी है। फिर उपयोगी क्या है ? जहाँ पर धर्म में द्वंद्व उत्पन्न हो जाए वहां पर संशयात्मिका वृत्ति का उदय होता है और-

अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।

(गीता 18/31)

भगवान् ने गीता के 18वें अध्याय में इसकी व्याख्या करते हुए समझाया कि जब बुद्धि में रजोगुण की प्रधानता होती है तो उस समय मनुष्य क्या करना है और क्या नहीं करना, इसका निर्णय नहीं कर पाता

और किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता है। फिर उसको किसी मार्गदर्शक की जरूरत होती है। भगवान् ने यही भूमिका यहां पर निर्माण की है और इस भूमिका के तहत ही अर्जुन अब भगवान् की शरणागति स्वीकार करते हुए उन्हीं से प्रार्थना करता है -

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता 2/7)

स्वयं को समर्पित करते हुए अर्जुन की यह प्रार्थना, गीता का बीज मन्त्र है, इस बीज से ही गीता ज्ञान रूपी वृक्ष का आविर्भाव हुआ है। इस बीज में भावना क्या निहित है? दो बातें याद रखना- अर्जुन यहां ब्रह्मविद्या के लिए प्रश्न नहीं कर रहा। अर्जुन की यह मांग नहीं है जैसा कि उपनिषद् का जिज्ञासु कहता है। अर्जुन न तो स्वर्ग को ही प्राप्त करने का कोई उपाय पूछ रहा है, स्वर्ग की चाह उसे नहीं है और न वह विश्व का साम्राज्य ही चाहता है। अगले श्लोक में उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है -

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥

(गीता 2/8)

हे प्रभो ! "मेरी इन्द्रियों को सुखाने वाला यह शोक दूर हो जाए, इसके लिए कोई उपाय मैं नहीं देख रहा। इस भूतल का अकण्टक राज्य मिल जाए या स्वर्ग का आधिपत्य प्राप्त हो जाए तब भी मेरे इन्द्रियों को सुखाने वाले शोक से छुटकारा मिल जाएगा, ऐसा मैं नहीं देख रहा हूँ"।

इसलिए अर्जुन को न तो प्रेय मार्ग की आवश्यकता है और न ब्रह्मज्ञान की उसे चाह है। ब्रह्म के विषय में उस का प्रश्न नहीं है। उस का प्रश्न धर्म के विषय में है। जो धर्म तत्कालीन समाज में प्रचलित था, उस धर्म से वह पूर्ण रूप से अवगत है। धर्म के विषय में वह मूढ़ नहीं है। धर्म की दो स्थितियां हैं और दोनों को समझ रहा है। क्षात्र धर्म की स्थिति है युद्ध करना और ब्राह्म धर्म की स्थिति है भिक्षाटन करना। क्षत्रिय के लिए यह विधान बनाया गया है कि वह आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्म धर्म को भी स्वीकार कर सकता है लेकिन दोनों धर्मों में उसे दोष का दर्शन हो रहा है इसलिए प्रभु के सामने जिज्ञासा व्यक्त करता है। गीता धर्म शास्त्र है, यह बात आप याद रखना। धर्म की जिज्ञासा से गीता का प्रारम्भ होता है इसलिए गीता का प्रारम्भ ही धर्म शब्द से होता है -

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय॥

(गीता 1/1)

गीता के प्रारम्भ में जिस प्रकार से "ध" शब्द है उसी प्रकार से आखिर में आप को "म" शब्द मिलेगा। यह "धर्म" गीता का सम्पुट है "धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे" और गीता का समापन कहां होता है ?

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

(गीता 18/78)

गीता के प्रारम्भ में "धर्मक्षेत्रे" तथा अन्त में "नीतिर्मतिर्मम" इस धर्म में ही सारी गीता बंधी हुई है और गीता के उपदेश के अन्त में भगवान् कहते हैं, अर्जुन !

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥

यह हमारा तुम्हारा धर्म संवाद है। इस धर्म संवाद का जो व्यक्ति अध्ययन करेगा -

ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥

(गीता 18/70)

उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होता हूँ, ऐसा मैं स्वीकार करता हूँ। गीता धर्म शास्त्र है इसलिए गीता के ऊपर जो मैंने भाष्य लिखा है उसका नाम रखा है "धर्म विज्ञान भाष्य", यह धर्म विज्ञान से युक्त ग्रन्थ है और मानव-मात्र के लिए यथार्थ धर्म की सीख देता है।

धर्म की जो विधा पूर्व मीमांसा वा उत्तर मीमांसा में वर्णित थी उसको गीता स्वीकार नहीं करती। गीता को यह मान्य नहीं है। पूर्व मीमांसा का लक्ष्य है स्वर्ग की प्राप्ति अर्थात् इष्ट और पूर्त कर्मों का अनुष्ठान करता हुआ मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करे और उत्तर मीमांसा का लक्ष्य है सम्पूर्ण इष्ट-पूर्त कर्मों का त्याग करके ब्रह्म की तलाश में मुमुक्षु बन करके साधना करता हुआ ब्रह्म को प्राप्त करे। एक में पूर्ण त्याग की प्रतिष्ठा है और दूसरे में पूर्ण राग की प्रतिष्ठा है। गीता में जो अद्भुत संदेश है वह त्याग-राग इन दोनों से विलक्षण है। यहां न तो त्याग है और न राग है। दोनों नहीं हैं। गीता में पूर्ण त्याग का भी उपदेश नहीं है और राग के लिए भी स्थान नहीं है। राग-त्याग के उपदेश में आप देखिए बड़े विलक्षण रूप में भगवान् कहते हैं कि यदि तुम राग से मुक्त होना चाहते हो तो तुम्हें मैं एक सुन्दर सा अवलम्बन बता रहा हूँ। वह कौन सा अवलम्बन है ? भगवान् ने कहा - पार्थ!

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।

(गीता 7/1)

राग यदि तुम्हें प्रिय है तो राग तुम मेरे से करो और त्याग यदि तुम्हें प्रिय है तो -

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।

(गीता 18 /2)

काम्य कर्मों का त्याग कर दो इसलिए गीता की एक विलक्षण भूमिका है। उस भूमिका में आप को आश्चर्यजनक यह बात समझने को मिलेगी कि पूर्व मीमांसा में वर्णित इष्ट-पूर्त कर्मों के द्वारा स्वर्ग प्राप्त करने की जो प्रक्रिया है वह गीता को स्वीकार नहीं है और उत्तर मीमांसा में वर्णित सब प्रकार के कर्मों का त्याग करके ब्रह्म का अनुसंधान करने की जो प्रक्रिया है वह भी गीता के लिए इष्ट नहीं है। इन दोनों सिद्धान्तों को गीता स्वीकार नहीं करती। गीता का संन्यासी बड़ा विलक्षण संन्यासी है। गीता का योगी बड़ा विलक्षण योगी है। गीता का संन्यासी और योगी कैसा है ? भगवान् कहते हैं -

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

(गीता 6 /1)

उत्तर मीमांसा का संन्यासी अक्रिय है लेकिन गीता के संन्यासी द्वारा भगवान् ने मानव मात्र के लिए एक ऐसा राजपथ प्रस्तुत किया है जिस पर चल कर के प्रत्येक श्रेणी का मानव परम कल्याण का भागी हो सकता है। पूर्व मीमांसा का अनुष्ठान सब नहीं कर सकते। पहला प्रश्न तो यह है कि क्या पूर्व मीमांसा के अनुष्ठान के सभी मानव अधिकारी हैं? वे कहते हैं कि नहीं, बिल्कुल नहीं। दूसरा यह कि क्या सभी उस अनुष्ठान को कर सकते हैं? कहा, यह भी नहीं हो सकता। कर भी नहीं सकते क्योंकि यज्ञ आदि करने के लिए, इष्टपूर्त कर्म करने के लिए अनेक प्रकार के सामर्थ्य की आवश्यकता होती है। सामर्थ्यहीन मानव बेचारा इष्ट कर्म का अनुष्ठान कैसे कर सकता है? न उससे इष्ट कर्म हो सकता है, न पूर्त कर्म हो सकता है इसलिए पूर्व मीमांसा के अधिकारी सब नहीं हो सकते और उत्तर मीमांसा के भी अधिकारी सब नहीं हैं। सब में इतना साहस नहीं है कि वे अपने कर्मों का त्याग कर दें, अपने परिवार का त्याग कर दें, अपने स्वधर्म

का त्याग करदें और विरक्त हो करके ब्रह्म की तलाश में प्रवृत्त हो जाएँ। यह तो कोई-2 मुमुक्षु ही ऐसा कर सकता है। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है -

नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहस्त्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी॥

(रा० 7 /54-1,2,3)

ब्रह्मलीन ज्ञानी उत्तर मीमांसा का साधक है। यह तो करोड़ों में कोई एक हो सकता है। सब के बस की बात नहीं है इसलिए सब उसके अधिकारी नहीं हैं। मुमुक्षु को षट्सम्पत्ति से सम्पन्न होना चाहिए। शम, दम, दया, तितिक्षा आदि जो साधन बताए गए हैं, उनका वह अनुष्ठाता होना चाहिए लेकिन गीता का जो मार्ग है, वह मानव-मात्र के लिए है। इसमें किसी प्रकार के अधिकारी भेद के लिए गुंजाइश नहीं। आप क्या करते हैं, इससे गीता का कोई मतलब नहीं। गीता कहती है -

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता 9/27)

जो करते हो सब प्रभु को समर्पित करते हुए करो।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता 18/46)

मानव अपने कर्मों द्वारा उसकी अभ्यर्चना करके परम सिद्धि को प्राप्त करता है। कर्म उसका कैसा है ? कर्म में केवल एक शर्त है कि वह

कर्म निर्वासनिक हो।

काम्यानां कर्मणा न्यासं।

वह कर्म काम्य नहीं होना चाहिए फिर कैसा होना चाहिए ? कार्य कर्म होना चाहिए।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।

(गीता 6/1)

काम्य कर्म और कार्य कर्म में अन्तर क्या है ? व्यक्तिगत स्वार्थ की दृष्टि से किया हुआ कर्म काम्य कर्म होता है। कार्य कर्म होता है लोक कल्याण की दृष्टि से किया हुआ कर्म। जो लोक कल्याण की दृष्टि से कर्म में प्रवृत्त होता है, वह कार्य-कर्म का अनुष्ठाता है, जो स्वयं के भोग के लिए कर्म में प्रवृत्त होता है, वह काम्य कर्म का अनुष्ठाता है। गीता काम्य कर्मों का निराकरण करते हुए कार्य कर्मों के लिए मनुष्य को प्रेरणा प्रदान करती है। गीता का मार्ग बिल्कुल नया तथा प्रशस्त मार्ग है। वह पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा से सम्बन्धित मार्ग नहीं है। अनेकों उदाहरणों के द्वारा अभी मैंने आप लोगों को यह बात समझाई है कि गीता का मार्ग बिल्कुल अनुपम, अद्वितीय और अद्भुत मार्ग है। उसमें अधिकारी भेद नहीं है जबकि पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा के मार्ग में अधिकारी भेद की प्रतिष्ठा है।

गीता दो प्रकार की बुद्धियों को धर्म का मूल आधार मानती है। गीता में चार प्रकार की बुद्धियों का वर्णन है - सांख्य बुद्धि, योग बुद्धि, काम्य बुद्धि और आसुरी बुद्धि। सांख्यबुद्धि और योग बुद्धि ही गीता को इष्ट वा मान्य है। ये गीता के द्वारा प्रतिपादित लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली बुद्धियाँ हैं इसलिए अपने परम भक्त जिज्ञासु को उपदेश देते हुए प्रभु ने गीता के दूसरे अध्याय में इन दोनों बुद्धियों का उल्लेख किया है -

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥

भगवान् का जो कथन है कि यह मैं तुम्हारे लिए सांख्य बुद्धि का उपदेश दिया हूँ। अब मैं तुम्हें योग बुद्धि का उपदेश दे रहा हूँ, जिसका अवलम्बन ले करके तू समस्त कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाएगा। कर्मबन्धनों से मुक्त होने के लिए योगबुद्धि का उपदेश है और इन दोनों बुद्धियों में भगवान् ने गीता के पांचवें अध्याय में, तीसरे अध्याय में, चौथे अध्याय में जगह-जगह पर यह बात समझाई है कि सांख्य बुद्धि की अपेक्षा योगबुद्धि श्रेयस्कर है, श्रेष्ठ है। सांख्य बुद्धि की अपेक्षा योग बुद्धि क्यों श्रेष्ठ है, यह एक अलग विषय है, इसके बारे में मैं फिर कभी अलग से विस्तार से समझाऊँगा। आज तो मैं केवल इतना ही बताना चाहता हूँ कि गीता में भगवान् ने सांख्य बुद्धि और योग बुद्धि, इन दोनों को कल्याण का साधन बताया है। भगवान् कपिल के द्वारा जिस बुद्धि का प्रकाश किया गया-

ऋषि प्रसूतं कपिलमस्तु मध्ये। ज्ञानं विवर्ति जायमानं च पश्ये॥

महाभारत में अनेकों स्थानों पर भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में ऋषियों ने यह बताया है कि यह वही भगवान् हैं, वही नारायण हैं जो कपिल रूप में अवतरित हो करके दिव्य ज्ञान का उपदेश दिये हैं और वहां पर स्पष्ट शब्दों में यह भी बताया है कि यह वही कपिल हैं जिन्होंने कर्दम के द्वारा अवतार लिया था, जिन्होंने सगर के सात हज़ार पुत्रों को अपनी योगाग्नि से भस्म कर दिया था। यह कृष्ण उसी कपिल के अवतार नारायण हैं ऐसा महाभारत में एक नहीं अनेकों जगह पर उल्लेख किया गया है इसलिए जो लोग यह मानते हैं कि कपिल सांख्य अलग है और गीता में बताया हुआ सांख्य अलग है, मैं समझता हूँ उनका यह कथन बिल्कुल युक्ति संगत नहीं है। महाभारत उसे समर्थित नहीं करती। महाभारत तो बार-2 यह बताती है कि कृष्ण कपिल के अवतार हैं और इन्हीं के द्वारा कपिलावतार में साठ हज़ार सगर के पुत्र भस्म किए गए थे। इन्हीं के द्वारा कपिलावतार में दिव्य दर्शन का आविर्भाव हुआ था।

कुछ आचार्यों ने अपने भाष्य में लिखा है कि गीता में वर्णित जो सांख्य बुद्धि है, यह कपिल सांख्य की बात नहीं है, यह तो अलग सांख्य है। यह कैसा सांख्य है ऐसा उन्होंने इसका विस्तार से तो नहीं बताया लेकिन कपिल सांख्य नहीं है, ऐसा उनका मत है। उनका यह मत असंगत है, महाभारत के अनुसार बिल्कुल युक्ति विरुद्ध और इतिहास विरुद्ध है। इसलिए मैं आप लोगों से बता रहा था कि जो कपिल सांख्य है, उसी को भगवान् ने सांख्य योग कहा है। आप लोगों ने यह भी सुना होगा कि कपिल सांख्य का सिद्धान्त है कि धर्म विशुद्ध बुद्धि का प्रकाश है। विशुद्ध बुद्धि के प्रकाश में चार तत्त्वों का आविर्भाव होता है-धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। ये चार तत्त्व गीता के विवेच्य हैं जिसको बुद्धियोग कह करके भगवान् ने संकेत किया है। अगले श्लोक में उसी को धर्म बताया है -

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता 2/40)

बुद्धियोग का यह धर्म महान् भय से मनुष्य की रक्षा कर देता है। इसका सबसे पहला लाभ है- "नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति" इस योगबुद्धि द्वारा अनुष्ठानित धर्म के अभिक्रम का नाश नहीं है। अन्य जितने धर्म हैं, उनके अभिक्रम का नाश हो जाता है, ऐसा शास्त्रकारों ने अनेकों स्थानों पर उल्लेख किया है। यदि धर्मानुष्ठान सही रूप में न हो और पूर्ण न हो तो उसके अभिक्रम का नाश हो जाता है। इष्ट और पूर्त कर्मों का अनुष्ठान करने वाला यदि उस अनुष्ठान को पूरा किए बिना छोड़ दे तो उसके अभिक्रम का, उसके प्रारम्भ का नाश हो जाता है। कहने का अभिप्राय उसे पुनः शुरू से करना पड़ेगा। यह नहीं कि जहां तक छूटा है वहां तक उसका पक्का हो गया। दूसरा- "प्रत्यवायो न विद्यते" - इसमें प्रत्यवाय अर्थात् उलटे फल के लिए गुंजाइश नहीं है लेकिन जो वैदिक धर्म है, उसका यदि सही माने में

अनुष्ठान न हो तो प्रत्यवाय प्रदान करता है यानी विपरीत परिणाम प्रदान करता है, विपरीत फल देता है। किसी यज्ञ का आप अनुष्ठान कर रहे हैं, यदि उस यज्ञ को आप ठीक ढंग से नहीं कर रहे हैं तो उसका विपरीत परिणाम आपको मिलेगा। यदि बीच में खण्डित हो गया है तो यह नहीं कि जहाँ खण्डित हो गया है वहां से आप शुरू करें, आपको पुनः शुरू से प्रारम्भ करना पड़ेगा। इसलिए अन्य धर्मों में दो प्रकार के व्यवधान हैं- एक तो उनका प्रत्यवाय फल अर्थात् सही ढंग से सम्पादन न होने पर विपरीत फल प्रदान करता है और दूसरा यदि वह पूर्ण नहीं हुआ तो उसके अभिक्रम का नाश हो जाता है लेकिन भगवन् कह रहे हैं कि जिस धर्म की व्याख्या मैं करने जा रहा हूँ अर्जुन! इस धर्म में ये दोनों नहीं है तथा -

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।

अन्य धर्म थोड़ी मात्रा में अनुष्ठित होने पर आपको महान भय से नहीं बचाएंगे लेकिन भगवान् कहते हैं कि मेरे द्वारा जो प्रतिपादित धर्म है, इसका थोड़ा सा भी मनुष्य यदि अनुष्ठान कर ले तो महान भय से बच जाता है। ये तीन लाभ हैं इस गीतोक्त धर्म के।

भगवान् हिरण्यगर्भ को योगबुद्धि का प्रतिष्ठाता माना गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि हिरण्यगर्भ और कपिल एक ही के नाम हैं लेकिन हमें महाभारत में ऐसा नहीं मिलता। योगबुद्धि के प्रतिष्ठाता के रूप में हिरण्यगर्भ का ही नाम आता है और सांख्यबुद्धि के उपदेशक के रूप में कपिल ही का नाम आता है। महाभारत में दोनों का एक साथ नाम आया है। यदि हिरण्यगर्भ और कपिल दोनों एक होते तो एक ही श्लोक में भगवान् व्यासदेव दोनों का उल्लेख कैसे करते ? इसलिए इस युक्ति-उत्तर के द्वारा यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि ये जो दो महापुरुष हुए हैं भगवान् कपिल और भगवान् हिरण्यगर्भ सृष्टि के प्रारम्भ में अवतरित हुए है

हिरण्यगर्भः संवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकासीत्।

हिरण्यगर्भ को हमारी भाषा में ब्रह्मा कहते हैं और पुराण की भाषा में भी ब्रह्मा कहा जाता है। महाभारत में उनको ब्रह्मदेव कहते हैं, वैदिक साहित्य में उन्हें हिरण्यगर्भ कहा गया है। ब्रह्मदेव योगबुद्धि के आचार्य हैं और भगवान् कपिलदेव सांख्यबुद्धि के आचार्य हैं। इन दोनों के द्वारा जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है, दोनों के रूप में स्वयं श्रीमन्नारायण ने ही अवतरित हो करके दोनों बुद्धियों का प्रतिपादन किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। दोनों एक दूसरे के पूरक भी हैं क्योंकि सांख्यबुद्धि द्वारा आत्मा और अनात्मा का बोध प्राप्त होता है और योग बुद्धि के द्वारा कर्मानुष्ठान की विधि का निर्देश प्राप्त होता है इसलिए दोनों प्रकार की बुद्धियाँ मनुष्य के लिए परमावश्यक हैं। एक योगज बुद्धि है जिसका वर्णन आपको योगदर्शन में मिलेगा, यह समाधिजन्य बुद्धि है। मेरी यह राय है कि महर्षि पतंजलि ने गीता के योग सिद्धान्त के आधार पर ही अपने दर्शन की रचना की है।

कुछ विद्वान् ऐसा मानते हैं कि पतंजलि का योगदर्शन गीता से पहले का है लेकिन मैं ऐसा स्वीकार नहीं करता। क्यों नहीं करता ? इसके लिए मैंने कई तर्क दिए हैं और उन तर्कों में एक तर्क यह है कि महाभारत में महर्षि व्यास ने कहीं भी पतंजलि ऋषि का ज़िक्र नहीं किया है। महाभारत में प्राचीन और अर्वाचीन, तत्कालीन और उसके पूर्व के समस्त ऋषियों के नाम का उल्लेख मिलता है। उनके सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है क्योंकि महाभारत तो एनसाइक्लोपीडिया है। This is an Encyclopedia of Hinduism. If you want to know different ideologies or a school of philosophy of India, you must read Mahabharata and you will know everything about that. महाभारतकार ने योगशास्त्र का जिक्र किया है और जहाँ कहीं योगशास्त्र का वर्णन आया है वहाँ पर हिरण्यगर्भ का उल्लेख है, पतंजलि का नहीं और पतंजलि का नाम हिरण्यगर्भ नहीं हो सकता, याद रखो। दूसरी बात,

पतंजलि के सिद्धान्तों में जहाँ भी हमें योगमार्ग की व्यवस्था दिखाई देती है, उसका मूल स्रोत हमें गीता में मिलता है। पतंजलि के योगदर्शन के ऊपर व्यास भाष्य है। वह व्यास कौन से हैं, यह प्रश्न होता है? कहीं कृष्ण द्वैपायन ने ही तो पतंजलि का भाष्य नहीं लिखा है? यदि कृष्ण द्वैपायन ने ही पतजंलि पर भाष्य लिखा होता तो अपनी महाभारत में वह जरूर पतजंलि का उल्लेख करते। दूसरी बात यह कि वर्तमान में जो महाभारत उपलब्ध है, इसका प्रवचन सौति ने किया है और सौति लोमहर्षण का पुत्र था और इसका प्रवचन जनमेजय यज्ञ के पश्चात् का है। भगवान् कृष्ण के काल में ही पांचों पांडव उपस्थित थे। जब भगवान् ने अपनी लीला का संवरण किया तो पांचों पांडव अपने पौत्र परीक्षित को राज्य देकर हिमालय में चले गए। आप लोग इस कथा को जानते हैं। परीक्षित की आयु उन दिनों 36 वर्ष की थी क्योंकि महाभारत के पश्चात् युधिष्ठिर छत्तीस वर्ष तक भारत के सम्राट रहे और छत्तीस वर्ष बाद भगवान् ने जब अपनी लीला का संवरण किया तो उस समय पाण्डव अपने पौत्र परीक्षित को राज्य दे करके हिमालय को चले गए। उनके स्वर्गारोहण का विषय महाभारत और श्रीमद्भागवत दोनों में आता है।

परीक्षित की मृत्यु के बाद उनका पुत्र जनमेजय गद्दी पर बैठा और बहुत दिनों पश्चात् उसे ज्ञात हुआ कि उनके पिता की मृत्यु कैसे हुई थी और पिता की मृत्यु के सारे रहस्य को जान लेने के पश्चात् वह सर्पयज्ञ का अनुष्ठान करता है। उनके सर्पयज्ञ में महर्षि वेदव्यास के प्रिय शिष्य वैशम्पायन ऋषि ने महाभारत की कथा उसे सुनाई है और उस कथा को सुनने के पश्चात् नैमिषारण्य में सौति ने महाभारत की कथा कही। जहाँ पर शौनक ऋषि की अध्यक्षता में अट्ठासी हज़ार ऋषि यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। शौनक को महासाल कहा गया है। महासाल उसे कहा जाता है जिसकी शाला यानी पाठशाला महान हो, जिसे विश्वविद्यालय आप कहते हैं। महात्मा

शौनक महान् ऋषि थे और उनके विश्वविद्यालय में 88000 विद्यार्थी अध्ययन करते थे। उन 88000 विद्यार्थियों के आग्रह पर सौति ने वहां पर महाभारत की कथा कही है और उसमें जनमेजय के यज्ञ का और उसके बाद में पाण्डवों की सारी कथा का वर्णन है महाभारत में। मेरे कहने का अभिप्राय कि सौति के काल तक कहीं पतंजलि ऋषि का हमें दर्शन नहीं मिलता क्योंकि सौति ने भी कहीं पतंजलि का उल्लेख नहीं किया। जहाँ उन्होंने अनेकों ऋषियों का वर्णन किया है, जनमेजय के यज्ञ में किन-2 ऋषियों ने भाग लिया वहां पर तमाम ऋषियों का उल्लेख मिलता है लेकिन पतंजलि का नाम नहीं है। इसलिए पंतजलि का योगदर्शन गीता के आधार पर लिखा गया है क्योंकि बहुत सी बातें जो गीता में हैं वही सूत्र रूप में पतंजलि ने अपने ग्रन्थ में लिखी हैं। इसके कई उदाहरण हैं, आप लोग देख लेना।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि योगबुद्धि गीता का मूल विषय है। योग बुद्धि का अधिकारी कौन हो सकता है ? भगवान् ने कहा जो भी उसकी साधना करे, वह योग बुद्धि का अधिकारी हो सकता है। योग बुद्धि मनुष्य के उत्थान में हेतु है और मनुष्य के निःश्रेयस की साधिका है। सांख्य बुद्धि भी उतनी ही उपयोगी है, इसमें कोई सन्देह नहीं लेकिन सांख्यबुद्धि सभी को प्राप्त नहीं हो पाती। सांख्यबुद्धि के अधिकारी सभी नहीं हो पाते। योग बुद्धि के अधिकारी सभी हैं। सांख्य बुद्धि के अधिकारी सभी क्यों नहीं हो पाते ? कारण क्या है उसमें ? भगवान् ने गीता के पांचवें अध्याय में तथा 12वें अध्याय में भी इसका विश्लेषण किया है, वहाँ पर भी बताया है कि सांख्यबुद्धि जो है वह निरालम्ब बुद्धि है। वह अक्षर तत्त्व के अन्वेषण में प्रवृत्त होती है। वह पुरुष और प्रकृति के विवेचन में प्रवृत्त होती है। उसको अंग्रेजी में हम कह सकते हैं - Analytical Process. वह सत् और असत् का अनुसन्धान करते हुए पूर्णता तक पहुँचने की प्रक्रिया है। वर्तमान में जो विज्ञान का स्वरूप है, यह सांख्य बुद्धि का स्वरूप है और

योग बुद्धि आस्था के साथ चलती है। आस्था के अभाव में योगबुद्धि नहीं चल सकती इसलिए भगवान् ने कहा कि जो सांख्य बुद्धि के अनुयायी हैं वे भी मुझे ही प्राप्त करते हैं -

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

(गीता 12/4)

लेकिन जो योगबुद्धि का अवलम्बन लेते हैं वे तो मेरे कृपा भाजन हैं। यहाँ पर अर्जुन प्रश्न करता है कि प्रभो आपको इन दोनों में कौन योगी प्रिय है ? योग का श्रेष्ठ ज्ञाता कौन है? बारहवें अध्याय में यह प्रश्न है अर्जुन का। वहां पर भगवान् यह बात समझाते हैं कि जो अक्षर ब्रह्म की उपासना करते हैं वे भी मुझे ही प्राप्त करते हैं लेकिन जो मेरी उपासना करते हैं, मेरे में आस्था करते हैं, मेरे में मन को लगाते हैं, वे मेरी दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। छठे अध्याय में भी कहा -

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

(गीता 6 /46)

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स म युक्ततमो मतः ॥

(गीता 6/47)

जो श्रद्धायुक्त है वह योगी है। जो मेरे में आस्था करके मेरा स्मरण करते हैं, वे योगी मेरे मत से श्रेष्ठ हैं। मेरे कहने का अभिप्राय कि सांख्य बुद्धि और योग बुद्धि, इन दोनों बुद्धियों में सांख्य बुद्धि उत्तम है। उससे भी परम पद की प्राप्ति होती है।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

(गीता 5/5)

भगवान् समझा रहे हैं कि सांख्य बुद्धि के द्वारा जिस पद की प्राप्ति होती है, योग बुद्धि के द्वारा भी उसी पद की प्राप्ति होती है। दोनों का लक्ष्य एक है लेकिन -

तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।

(गीता 5/2)

सांख्यबुद्धि की अपेक्षा योगबुद्धि की साधना सुगम है और योग बुद्धि ही गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

मैं आप लोगों को यह बताना चाहता था कि गीता से पूर्व जिस धर्म का प्रचलन था, वह धर्म मानव मात्र के लिए परम कल्याण का मार्ग सुलभ कराने में सक्षम नहीं था। उसमें दो प्रकार के धर्मों की प्रतिष्ठा थी। पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा उसके आदर्श थे लेकिन इन दोनों के लिए भिन्न-2 अधिकारी भेद की व्यवस्था थी। भगवान् के इस दिव्य मार्ग में किसी प्रकार के अधिकारी भेद की व्यवस्था नहीं है। कोई भी इसका अनुष्ठान कर सकता है इसलिए यह मानव मात्र के कल्याण का सुनिश्चित मार्ग है।

हरि ॐ तत्सत्।

गीतोक्त धर्म

मेरी प्रिय आत्माओ !

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सबके लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना। कल मैंने आप लोगों को गीता के उपदेश की भूमिका बताई थी और आज मैं आप लोगों को गीतोक्त धर्म की व्याख्या समझाऊँगा। सांख्य और योग, इन दोनों शास्त्रों का यह कथन है कि मनुष्य के उत्थान में विशुद्ध बुद्धि का मुख्य स्थान है। बुद्धिहीन प्राणी तो मनुष्यत्व से ही वंचित हो जाता है, उसके उत्थान वा विकास की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती और विशुद्ध बुद्धि युक्त मनुष्य के लिए चार प्राप्तव्य बताए गए हैं - धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। गीता उसी की व्याख्या करती है, उसी को समझाती है। गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय धर्म है और उस धर्म का आधार योग बुद्धि है। कल मैंने आप लोगों को बताया था, भगवान् ने यह बात कही -

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥

(गीता 2/39)

और उसी को उन्होंने धर्म भी कहा -

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता 2/40)

गीतोक्त धर्म योग बुद्धि का परिणाम है। महर्षि पतंजलि ने योग बुद्धि को ऋतम्भरा प्रज्ञा कहा है।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।

(यो० सू० 1/48)

इस ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति कब होती है? कहा, योग के अभ्यास के द्वारा। जब साधक सविकल्प अथवा निर्विकल्प, सविचार अथवा निर्विचार, इन चारों अवस्थाओं को पार कर जाता है तो पतंजलि कहते हैं -

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः। ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा॥

(यो० सू ० 1/47,48)

निर्विचार समाधि की सिद्धि के पश्चात् आत्मप्रसाद जागृत होता है और उस आत्म प्रसाद से ऋतम्भरा नाम की प्रज्ञा प्राप्त होती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा किसे कहते हैं ?

ऋतं सत्यं भरति इति ऋतम्भरा।

जो सत्य से पूरिपूर्ण है। आप लोगों ने सुना होगा वेद के विज्ञान में दो तत्त्व हैं जिससे सृष्टि का आविर्भाव होता है, उसमें एक का नाम है सत्य और दूसरे का नाम है ऋत्।

सत्यं च ऋतं च ऋतं च सत्यं च अध्यासीत्।

यह ऋग्वेद का अभिभाषित मन्त्र है और हमारी सन्ध्या में इसको प्रतिष्ठित किया गया है। यह ऋत् और सत् तत्त्व क्या है, इसको समझ लीजिए पहले। सत्य वह तत्त्व है जिसकी सत्ता है- "सत् अयं"। ऋत् कहते हैं गति को अर्थात् उस पदार्थ के परिवर्तन के नियम को ऋत् कहते हैं। जैसे इतनी मात्रा में यदि हाइड्रोजन, इतनी मात्रा में आक्सीज़न मिला

दिया जाए तो उससे पानी बन जाता है, यह नियम है और उस "डिवाईन लॉ" का नाम ऋत् है। इसी प्रकार से पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है या पृथ्वी जो सूर्य के आकर्षण पर अवस्थित है या सूर्य के अन्य जितने सदस्य हैं वे सूर्य के आकर्षण पर स्थित हैं, इस नियम का नाम ऋत् है। यह प्रकृति इस रूप से ऐसे परिवर्तित हो करके इस दशा को प्राप्त होती है - इस "लॉ" का नाम ऋत् है। This natural law or divine law is existing in everything and that divine law is called rit. गति ऋत् में होती है और विकास भी ऋत् में होगा। पदार्थ अपने आप में कोई महत्व नहीं रखता यदि उस पदार्थ में परिवर्तन न हो, गति न हो। दो तत्त्व हैं - एक सत्तात्मक तत्त्व है और दूसरा गत्यात्मक तत्त्व है। उस "डिवाईन लॉ" का नाम है ऋत् और उस ऋत् से परिपूर्ण जो बुद्धि है यानी जो एग्जिस्ड कर रहा है, जैसे प्रकृति और पुरुष है, इन के तमाम क्रिया-कलापों को, प्रकृतिगत समस्त नियमों को जिसके द्वारा जाना जाए, उस प्रज्ञा का नाम है ऋतम्भरा प्रज्ञा इसलिए ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त कर लेने के पश्चात् योगी सर्वज्ञ हो जाता है।

सः सर्वज्ञः सर्वविद् भवति।

उसे भगवान् ने योगबुद्धि कहा है। यह ऋतम्भरा प्रज्ञा बिना साधना के नहीं मिलती। इस योगबुद्धि का अधिकारी कौन बनता है ? महर्षि पतंजलि ने कहा है -

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

(यो० सू० 1/20)

जो श्रद्धावान् है, जो उत्साही है, लगन वाला है और जो तीव्र स्मृति वाला है, वही समाधि प्रज्ञा का अधिकारी होता है और समाधि प्रज्ञा को प्राप्त करके ही व्यक्ति असंप्रज्ञात समाधि का पात्र बनता है। यहाँ पर भगवान् ने यह बात समझाई कि योगबुद्धि वा योगज बुद्धि योग की साधना से प्राप्त हुई

बुद्धि है। यह जो तुम्हारी लौकिक बुद्धि है, जो नैचुरल वा सहज बुद्धि है, जो जन्म के साथ तुम्हें प्राप्त है, जब मोह रूपी दलदल को पार कर जाएगी तब योग बुद्धि की प्राप्ति होगी।

यदा ते मोहाकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥

(गीता 2 /52, 53)

यह गीता के दूसरे अध्याय में भगवान् ने योग बुद्धि को प्राप्त करने की विधि बताई। अब उसी के साथ छठे अध्याय में उस योग की साधना बताई कि इस प्रकार से योग की साधना करते हुए मनुष्य उस बुद्धि को प्राप्त कर सकता है जिस के प्रकाश में सब कुछ जानने में वह समर्थ होता है। वह योग बुद्धि गीतोक्त धर्म का मूल आधार है इसलिए गीता का धर्म विध्यात्मक नहीं बोधात्मक है। इसका अभिप्राय है कि गीता के धर्म की कोई विधि नहीं है कि यह काम इस प्रकार से करोगे तो धर्म हो जाएगा और इस प्रकार से नहीं करोगे तो अधर्म हो जाएगा, ऐसा नहीं है। इसको विध्यात्मक धर्म कहते हैं। आप लोगों ने सुना होगा हमारे यहां धर्मशास्त्र की दो विधाएँ हैं जिसको कहते हैं विधि और निषेध। कुछ तो करणीय हैं जिनको विधि वाक्य कहा गया है और कुछ नहीं करणीय हैं जिनको निषेध वाक्य कहा गया है। जैसे -

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।

(तैत्तिरीय0 1 /11-2)

यह विधि वाक्य है और निषेध वाक्य है- "मा हिंसा सर्व भूतायाम्।" यानी यह किसी भी अवस्था में नहीं करना है। यजुर्वेद का एक सूत्र है जिसमें ऋषि कहता है, मेरी गऊओं को मत मारो, मेरे घोड़ों को मत मारो,

मेरी भेड़ों को मत मारो, मेरी बकरियों को मत मारो। आखिर में कहता है, मेरे किसी भी प्राणी को मत मारो - "मा हिंसा सर्व भूतायाम्" इसको कहते हैं निषेध। तो विधि और निषेध, ये दोनों बातें आप को धर्म के सम्बन्ध में मिलती हैं। जो निषेध है वह अधर्म है और जो विधि है वह धर्म है- ऐसा बताया गया लेकिन गीता कहती है भई ! विधि और निषेध के प्रवाह में मत बहो। धर्म न तो विध्यात्मक है और न निषेधात्मक। धर्म है बोधात्मक। बोधात्मक माने तुम अपनी बुद्धि से विचार करो कि तुम्हारे लिए क्या करणीय है और क्या नहीं करणीय है।

इतिहास में कई उदाहरण आते हैं और वे आपको एक नई दिशा प्रदान करते हैं। कहाँ पर सत्य असत्य हो सकता है, कहाँ पर असत्य सत्य हो जाता है और कहां सत्य सत्य रहता है, यह जानना बहुत जरूरी है। किसके लिए सत्य असत्य होता है, किसके लिए असत्य सत्य होता है और किसके लिए सत्य सत्य रहता है और किसके लिए असत्य असत्य रहता है, यह जानना बहुत जरूरी है। अपना गुप्तचर यदि किसी देश में पकड़ा जाए और यदि वह सत्यवादी बन जाए तो क्या बनेगा ? देश का सर्वनाश। उस समय उसका धर्म क्या है ? बिल्कुल सफेद झूठ बोलना, ऐसा सफेद झूठ बोलना उसके लिए धर्म है। ऐसी स्थिति में सत्य बोलना अनर्थकारी, देशघाती, राष्ट्रघाती, समाजघाती बन जाता है और विशुद्ध झूठ बोलना धर्म बन जाता है। जिससे लोक की रक्षा हो, राष्ट्र की रक्षा हो, समाज की रक्षा हो, वह धर्म है। ऐसे अनेकों उदाहरण आप देख सकते हैं। किसी व्यक्ति का प्राण जा रहा हो और आप यदि झूठ बोल कर उसके प्राण बचा दें तो आप धर्मात्मा हैं, पापी नहीं।

महाभारत में एक कथा है। एक ऋषि हुए और उन के जीवन की एक घटना है। ऋषि अपनी कुटिया में ध्यान में मग्न थे। ध्यान में उनको यह बोध नहीं था कि कौन आ रहा है, कौन जा रहा है। उस राज्य के राजमहल

में चोरों ने चोरी की और धन लेकर वे भागे जिसमें महारानी के आभूषण और कुछ रत्न थे। राज पुलिस उनके पीछे लग गई। चोर भागते हुए जंगल में पहुँचे और देखा कि यदि हम कहीं इधर-उधर हुए तो पकड़े जाएंगे। चोरी का सारा माल उन्होंने ऋषि की कुटिया में छुपा दिया और जंगल में चले गए। राजपुरुषों ने चारों तरफ ढूंढा, वहाँ कुछ नहीं मिला। अब वे आ गए कुटिया में। सोचने लगे, यहाँ तक तो चोर दिखाई दिए थे, इसके आगे वे कहां गायब हो गए। यहीं कहीं होंगे। ऐसा न हो कहीं कुटिया में शरण लिए हों। कुटिया में गए तो ऋषि ध्यान मग्न बैठे थे। प्रातः काल का समय था। राजपुरुषों ने देखा कि यहां तो कोई है नहीं लेकिन कुटिया से बाहर किसी को जाते देखा नहीं गया। उन्होंने कुटिया की तलाशी ली तो महारानी के हार और जो जवाहरात थे सब वहीं पड़े हुए थे। राजपुरुषों ने सोचा कि यह जो व्यक्ति ध्यान लगाए हुए बैठा हुआ है, यह इसी की करामात है। चोर इसके शिष्य होंगे और यह चोरों का गुरु है। हम लोगों को देख करके नकली आँख बंद करके ध्यान लगा रहा है। ऋषि अपने साधन में मग्न थे। उन्होंने कहा, यह ऐसे नहीं चलता तो इसको उठा करके ले चलो। वे ऋषि को उठा करके ले गए और राजा के सामने वहाँ रख दिया। राजा ने पूछा कि यह कौन है ? कहा कि यह चोरों का सरदार है। यह सारा माल इसकी कुटिया से बरामद हुआ है और यह हम लोगों को देखकर के आँख बन्द करके बैठ गया, अब भी उसी प्रकार का नाटक यह यहाँ कर रहा है। राजा ने कहा, इसे सूली पर चढ़ा दो। उस ऋषि को जाकर सूली पर बैठा दिया गया। उनकी मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह उसी रूप में बैठे रहे। सूली मलद्वार से छेदन करती हुई अन्दर प्रवेश कर गई और वह बैठे रहे। न कोई आवाज़ आई, न कोई चीख और न कोई पुकार। वह तो समाधि में थे। उनको तो कोई पता हीं नहीं। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गए, उनके शरीर में कोई विकृति भी नहीं आई। जल्लादों ने जाकर के राजदरबार में

सूचना दी कि जिस व्यक्ति को हमने सूली पर चढ़ाया वह तो वैसे ही पड़ा हुआ है, उसके शरीर में कोई विकृति नहीं आ रही है। यह सुनना था तो राजा कांप गया कि कोई असली ऋषि तो नहीं है। राजा वहां गया और देखा वह उसी मुद्रा में बैठे हुए थे। राजा भयभीत हो गया। उसने कहा जल्दी से इनको सूली से उतारा जाए। जो उनके मलद्वार में प्रवेश किया गया था वह काट करके उनको उतारा। उसके बाद खून बहने लगा, अब धीरे-धीरे ऋषि का ध्यान खुला। उन्होंने आँख खोलकर देखा यह क्या बात है ? राजा हाथ जोड़े खड़ा है। महाराज! मेरे से गलती हो गई। फिर उन्होंने अपने शरीर की तरफ देखा। तो सारी बात समझ ली। उन्होंने कहा - राजन ! तेरा इसमें कोई दोष नहीं। तुम्हारे राजपुरुषों का भी कोई दोष नहीं। दोषी को मैं जानता हूँ और इसका दण्ड मैं उसे दूंगा। तुझे मैं कुछ भी नहीं कहूँगा। फिर बैठ गए वह समाधि में और पहुँच गए यमराज के पास, यमपुरी में। यमराज और धर्मराज दोनों एक के ही नाम हैं। वह धर्मात्माओं के लिए धर्मराज और पापियों के लिए यमराज है। वह धर्मराज के पास पहुँच गए। धर्मराज ने देखा कि ऋषि बड़े क्रोध में उसकी तरफ आ रहे हैं। यमराज उठ करके खड़ा हुआ, कांप गया। कहा, आइए महाराज विराजिए। कहा, विराजने की बात नहीं है। मुझे तू यह बता मेरे किस अपराध से तूने मुझे सूली पर बिठवाया क्योंकि दुनिया के दण्ड का विधान तो तेरे सिवा और कोई करता नहीं। यमराज ने कहा-भगवन् ! आपको सूली पर बैठाया गया यह आपके कर्म का परिणाम था। ऋषि ने कहा मेरा कोई दोष नहीं, मेरा क्या कर्म था ? उन्होंने कहा कि आपके पिछले जन्म की घटना है। आप कबूतर को पकड़ कर कीकर वा बबूल का कांटा लेकर के उसके गुदा में डालते थे तो वह तड़प उठता था और आपके लिए खेल होता था, इस ढंग से आप उसे मारते थे। उस पाप वा उस कर्म के परिणाम में आप को यह दण्ड मिला है। ऋषि ने पूछा, यमराज तुम होश में हो कि नहीं ? मुझे कोई स्मृति नहीं है कि

मैंने किसी भी जन्म में ऐसा कोई कर्म किया हो। मैंने कभी कोई ऐसा कर्म नहीं किया, मुझे अपने कई जन्मों की बात याद है। उसने कहा कि महाराज आप ने किया है और आप के उस जन्म की यह घटना है। ऋषि ने कहा कि मूर्ख यह मेरा किया हुआ कर्म नहीं है। यह तो एक बालक का किया हुआ कर्म है। कहा कि वह बालक आप ही थे। फिर ऋषि को क्रोध आ गया, उन्होंने कहा, तुम्हें यह पता नहीं है कि पाँच वर्ष तक के बच्चे के कार्य का दायित्व उसकी माँ पर होता है। बच्चा अपराधी नहीं होता और उसके पश्चात् बारह वर्ष तक यानी सात वर्ष तक उसके अपराध का कारण उसका पिता होता है, बच्चा नहीं होता। बारह बर्ष के बाद वह अपने कर्म का जिम्मेदार होता है। तूने यह वेद का सिद्धान्त नहीं पढ़ा। यह सुनना था तो धर्मराज ने कहा, महाराज! क्षमा करें गल्ती हो गई। कहा, नहीं मैं तुम्हें अपने श्राप से कभी भी मुक्त नहीं कर सकता और नीच बुद्धि से तुमने कर्म का जो यह सम्बन्ध मुझसे किया है, इसके बदले में तुम मर्त्यलोक में जाकर नीच कुल में जन्म लोगे। धर्मराज ऋषि के पाँव पकड़ कर·रो दिए और कहा, महाराज क्षमा कीजिए, मेरा उद्धार? कहा, सौ वर्ष तक तुम्हें मृत्युलोक में इस दण्ड का भागी बनना पड़ेगा। सौ वर्ष के पश्चात् तुम पुनः अपने पद को प्राप्त कर लोगे। हमारे श्राप से नीच कुल में तुम्हारा जन्म तो होगा लेकिन अब मैं तुम्हें क्षमा करते हुए साथ में वरदान भी देता हूँ कि वहां पर तुम महान् बुद्धिमान और नीतिज्ञ माने जाओगे और दुनिया तुम्हारा आदर करेगी। ऋषि की बात सुन करके धर्मराज को शान्ति मिली और उसी ऋषि के श्राप से धर्मराज भारत में विदुर के रूप में जन्म लिए। थे एक शूद्र के पुत्र परन्तु ऋषि के वरदान से महान् विद्वान् हुए और आज भी विदुर का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि धर्म और अधर्म की मीमांसा बड़ी ही विचित्र है। इसको समझना आसान नहीं। किस समय कौन सी

क्रिया किसके लिए धर्म होगी यह कौन निर्णय दे सकेगा? कहा, वही विशुद्ध प्रज्ञा का जो धनी होगा अन्यथा धर्मराज ऐसे से भी यह भूल हो जाती है न्याय करने में वा धर्म अधर्म का निर्णय करने में।

गीता कहती है धर्म विध्यात्मक नहीं बोधात्मक है। अपने विवेक के प्रकाश में तुम धर्म और अधर्म का निर्णय करो। अर्जुन जब कहता है - "शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" मैं आपकी शरण में हूँ, आप मुझे उपदेश दीजिए। भगवान् उसे कहते हैं "बुद्धौ शरणमन्विच्छ:" बुद्धि की शरण में जाओ। परमात्मा की शरण में जाने पर ही तुम्हारा उत्थान हो सकता है और बुद्धि की शरण में यदि तुम नहीं जाते तो "कृपण: फलहेतव:" जो वासना की शरण में रहते हैं वे कृपण हैं, पतित हैं, दीन हैं। गीता कहती है कि तुम क्या करते हो इसकी महिमा नहीं है, तुम क्यों करते हो इसकी महिमा है। तुम्हारे करने के पीछे जो तुम्हारी भावना है, वह क्या है ? यदि भावना तुम्हारी अच्छी है, कर्म तुम्हारा निकृष्ट है, तो उस कर्म का कभी भी निकृष्ट परिणाम नहीं होगा, याद रखो। गीता कहती है कि कर्म का फल नहीं होता, कर्म के पीछे जो भाव होता है, उसी का फल होता है। आप लोग भी जानते हो, दुनिया का प्रत्येक मनुष्य यह बात जानता है कि कर्म एक होते हुए, भाव की भिन्नता से परिणाम की भिन्नता हो जाती है। कर्म एक है। नारी के सौन्दर्य को उसका पिता देख करके खुश नहीं होता क्या ? उसका भाई खुश नहीं होता क्या ? सभी प्रसन्न होते हैं, उनको भी आह्लाद होता है लेकिन जो आह्लाद उसके पति का होता है वही आह्लाद उसके पिता और भाई को भी होता है क्या ? क्या वही आह्लाद उसके पुत्र को भी होता है? आह्लाद में अन्तर है। अन्तर क्यों है ? दृष्टि एक है, रूप एक है, देखने की प्रक्रिया एक है लेकिन उसके परिणाम में भेद हैं क्योंकि उसके भाव में भेद है। भाव में भेद होने के नाते परिणाम में भेद है।

रामायण में एक बड़ा सुन्दर प्रसंग है। जब सीता जी को विदा

करने लगे तो महाराज जनक महल में गए और दौड़ कर पुत्री सीता को उन्होंने गले से लगा लिया। तुलसीदास जी लिखते हैं -

लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की॥

(रा० 1/338-3)

उनके उस वात्सल्य भाव में ज्ञान की मर्यादा बह गई अर्थात् रही नहीं। मेरे कहने का अभिप्राय कि मनुष्य के कर्म का परिणाम क्रिया के अनुसार नहीं भाव के अनुसार होता है। गीता कहती है कि तुम्हारे कर्म में क्या भाव है, यह बताओ पहले तुम। अर्जुन पहले भी युद्ध ही करने जा रहा था और गीता सुनने के पश्चात् भी उसने युद्ध ही किया लेकिन जो अर्जुन पहले युद्ध करने जा रहे था, वह अर्जुन तब नहीं था जो गीता सुनने के बाद युद्ध में प्रवृत्त हुआ। पहले अर्जुन युद्ध करता था अपने शत्रुओं के संहार के लिए वा अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए। उसका सत्त्व, अधिकार उसके शत्रुओं ने धोखे से छीन लिया था, उसे पुनः प्राप्त करने की दृष्टि से युद्ध करने के लिए अर्जुन तत्पर हुआ था इसलिए उसके हाथ में धनुष-बाण और उसके जीवन में महान् उत्साह था। धनुष उठाकर उसने भगवान् से कहा - कृष्ण!

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत॥

(गीता 1/21)

मेरे इस रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कर दे। क्या करोगे?

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे॥

(गीता 1/22)

ज़रा मैं देखूं तो वे कौन लोग हैं जिनसे मुझे इस युद्ध भूमि में युद्ध करना है। वही अर्जुन जब गीता सुन ली, सारा ज्ञान प्राप्त हो गया, सोई हुई स्मृति जागृत हो गई तो भगवान् से क्या कहा उसने ?

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

(गीता 18/73)

आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया, मुझे स्मृति प्राप्त हो गई। हे अच्युत! -

स्थितोऽस्मि गतसन्देहःकरिष्ये वचनं तव।

(गीता 18/73)

अब मेरा सन्देह चला गया है। अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। भगवान् की आज्ञा क्या थी ? -

मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा

(गीता 11/34)

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।।

(गीता 11/33)

यह सब तो मेरे द्वारा मारे गए हैं, तू चिन्ता छोड़ कर केवल निमित बन जा। तू अपने आपको निमित मान कर्त्ता मत मान क्योंकि -

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।

(गीता 3/27)

तू युद्ध अपने लिए मत कर, मेरे लिए कर। पहले अर्जुन युद्ध कर रहा था अपने लिए और गीता सुनने के बाद अर्जुन युद्ध अपने लिए नहीं कर रहा है, प्रभु की आज्ञा का पालन करने के लिए युद्ध कर रहा है। इतना अन्तर पड़ गया। वह मालिक से माली बन गया। वह कर्त्ता से निमित बन गया। यह गीतोक्त धर्म का स्वरूप है। इसमें क्या कर रहे हो, इससे कोई मतलब नहीं है। हो सकता है तुम वेद पाठ कर रहे हो, तुम यज्ञ कर रहे हो, तुम दान दे रहे हो, तुम तप कर रहे हो, बड़े उत्तम कर्म हैं ये सारे। उत्तम कर्म तो हैं ये सारे परन्तु ये सारे कर्म यदि तुम वैसे ही कर रहे हो जैसे रावण ने किया, जैसे मेघनाद ने किया। रावण ने भी तप किया था, मेघनाद ने भी

कम तप किया था क्या ? रावण ने भी यज्ञ किया था, मेघनाद ने भी यज्ञ किया था। रावण ने भी दान दिया – सामान्य दान नहीं, अपना मस्तक दान दिया था लेकिन वह धर्मात्मा तो नहीं बना। महर्षि वाल्मीकि ने उसके लिए अनेकों जगह पापात्मा शब्द का प्रयोग किया है। धर्मात्मा नहीं बना वह। शंकर का अनन्य पुजारी होते हुए भी, महान तपस्वी होते हुए भी, वेद का विद्वान होते हुए भी, पुलस्त्य कुल में होते हुए भी, जिसमें तप है, विद्या है, जो उत्तम कुल में पैदा हुआ है जो भगवान् शंकर का अनन्य भक्त है, इतने गुणों के होते हुए भी वह धर्मात्मा नहीं कहलाया। महर्षि वाल्मीकि ने उसे पापात्मा कह कर सम्बोधित किया है क्योंकि उस का जो कुछ प्रयत्न था उसके कल्याण में हेतु नहीं बना, आदर्श नहीं बना।

मैं आपसे निवेदन कर रहा था कि गीता का धर्म विध्यात्मक नहीं है, बोधात्मक है। गीता ने धर्म की कोई ऐसी लकीर नहीं खींच दी कि इस पर चलोगे तो धर्मात्मा कहे जाओगे, इसके विपरीत चलोगे तो पापी कहे जाओगे। ऐसा नहीं। जैसे स्मृतियों का धर्म विध्यात्मक है, उसमें विधि-निषेध की व्यवस्था है। गीता कहती है कि विधि-निषेध के रूप में धर्म की जो व्याख्या है वह धर्म हमेशा मनुष्य के लिए कल्याणकारी नहीं होता। यही कारण है कि विध्यात्मक धर्म के अनुयायी भीष्मपितामह व द्रोणाचार्य आदि महान तत्त्ववेत्ता होते हुए भी द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके। जब द्रौपदी को दु:शासन घसीट कर वहाँ ले आया जहाँ बड़े-2 देशों के राजा और ऋषि विराजमान थे। द्रौपदी ने सबसे प्रश्न किया कि यदि धर्मराज युधिष्ठिर पहले अपने आप को हार गए थे तो उसके बाद क्या उनको अधिकार था उसे हारने का? बड़ा विकट प्रश्न था उसका। उस समय केवल एक व्यक्ति था विकर्ण जिसने यह घोषणा की कि द्रौपदी जो कह रही है इसके प्रश्न का उत्तर मिलना चाहिए लेकिन भरी सभा में किसी की हिम्मत नहीं हुई। जब द्रौपदी ने सम्बोधन करते हुए कहा-पितामह! आप

बताइए, मैं आप की पुत्रवधू हूँ। आपके सामने मेरी यह दुर्गति हो रही है, मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते ? पितामह ने कहा, पुत्री मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर जानता हूँ, किन्तु दे नहीं सकता। मेरी जुबान बंद है। क्यों बंद थी उनकी जुबान? क्या कारण था? केवल यही न कि मैंने पापी दुर्योधन का अन्न खाया है। क्या सही में भीष्मपितामह ने दुर्योधन का अन्न खाया था , क्या राय है आप लोगों की ? दुर्योधन कोई खेती तो नहीं करता था। सही में राज अन्न खाने का अर्थ दुर्योधन का अन्न खाना तो नहीं होता। वह उस समय राजा भी नहीं था और भीष्मपितामह दुर्योधन के पितामह थे। उनका तो अधिकार था उस पर लेकिन विध्यात्मक धर्म ने उनका मुंह बंद कर रखा था। इस धर्म का नियम है कि जो गद्दी पर बैठेगा, वह राजा होगा और राजा परमात्मा का प्रतिनिधि होता है इसलिए राजा की आज्ञा के विरुद्ध कोई बात नहीं करनी, यह विधि है। जो शास्त्रों में लिखा हुआ है, इसी विधि का पालन करते हुए भीष्मपितामह बोल नहीं सके, न द्रोणाचार्य बोल सके, न कृपाचार्य बोल सके, न अश्वत्थामा बोल सका। ये महाविद्वान् थे उस समय लेकिन कोई नहीं बोल सका। कभी-2 विध्यात्मक धर्म मनुष्य के पतन में हेतु हो जाता है।

आपसे यदि मैं आज एक बात पूछूं, रामायण आप सब पढ़ते हैं। 1956 में रामायण का प्रचार यहां मैं अयोध्या से लेकर के आया। अब तक उसकी ध्वनि गूंजती रहती है कहीं न कहीं आपके उदयपुर में, यह सभी जानते हैं। उस रामायण में भरत का एक बड़ा सुन्दर प्रसंग है। भरत जब ननिहाल से आते हैं तो गुरु कहते हैं, तुम्हें राजा ने राज्य दिया, राज्य करो। वेद कहता है, पिता जिसे राज्य देता है वही राज्य पाता है केवल। मैं गुरु होकर तुम्हें कहता हूँ कि तुम राज्य करो। मंत्री कह रहा है कि तुम राज्य करो। माता कौशल्या कह रही है कि तुम राज्य करो। पिता राज्य देकर चले गए हैं। सारी प्रजा कह रही है कि भरत तुम राज्य करो। यदि उस समय

भरत गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके राजगद्दी पर बैठ जाते तो क्या वह अन्याय करते ? क्या वह धर्मविरुद्ध काम करते?

करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू॥

(रा० 2/207-4)

यदि तुम गद्दी पर बैठ जाते तो तुम्हें कोई दोष नहीं होता और राम यदि यह सुनते कि भरत गद्दी पर बैठ गया है तो उन्हें बड़ा संतोष होता। लेकिन भरद्वाज जी कहते हैं कि भरत ! तूने तो ऐसा काम कर दिया जो किसी ऋषि की कल्पना में भी नहीं था।

अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।

(रा० 2/207)

तुम्हारे लिए यही उचित था जो तुमने किया है यद्यपि यह धर्म विरुद्ध था। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना धर्मविरुद्ध है। पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना धर्म विरुद्ध है। माता की आज्ञा का उल्लघंन करना धर्मविरुद्ध है लेकिन भरत ने धर्मविरुद्ध आचरण करके एक महान् धर्म की प्रतिष्ठा की क्योंकि जो विध्यात्मक धर्म था, उस को उन्होंने अस्वीकार कर दिया और बोध के प्रकाश में जो उनको प्रिय लगा कि यह उनके लिए धर्म है, उस को उन्होंने अंगीकार किया। उसका परिणाम है कि रामायण की कथा आज मानव मात्र के लिए आदर्श है। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि गीता का धर्म विध्यात्मक नहीं बोधात्मक है। आप शास्त्र के प्रकाश में, तर्क के प्रकाश में, बुद्धि के प्रकाश में अपने धर्म और अधर्म का निर्णय कीजिए। आपके लिए वही करणीय है? जो आपके लिए हितकर हो लेकिन समाज के लिए यदि अहितकर हो तो आपको वह कर्म नहीं करना चाहिए, वह धर्म होते हुए भी पाप होगा। जो समाज के लिए कल्याणप्रद है लेकिन आपकी उसमें थोड़ी सी हानि दिखाई दे रही है, भगवान् कह रहे हैं वह तुम्हारी हानि नहीं हो सकती क्योंकि जिसमें लोक

का हित है उसमें तुम्हारा भी हित निहित है इसलिए तुम्हारे लिए वह करणीय कर्म है। यह गीता के धर्म की विशिष्टता है। प्रभु कहते हैं -

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

(गीता 9 /1)

गीतोक्त धर्म ज्ञान-विज्ञान सम्मत है। पहले कामना का नाश कर दो क्योंकि यह ज्ञान और विज्ञान को नष्ट करने वाला है। ज्ञान-विज्ञान युक्त धर्म ही सही माने में मानव के लिए उपयोगी धर्म है और उसी धर्म की सीख भगवद्गीता देती है।

आज के इस प्रवचन का सार है कि गीता जिस धर्म का प्रतिपादन करती है वह बोधात्मक है, विध्यात्मक नहीं। धर्म एक लकीर के समान नहीं है कि उसी के पीछे तुम दौड़े चलो बल्कि योगबुद्धि के प्रकाश में तुम यह निश्चय करो कि तुम्हारे लिए क्या करणीय है और क्या करणीय नहीं है। जो लोक हित में उपयोगी हो उसका अनुष्ठान करो और जिससे लोक का अहित होता हो उसका त्याग करा दो। महात्मा बुद्ध कहा करते थे कि किसी भी बात को तुम इसलिए मत मानो कि बहुत बड़े आदमी ने कही है। किसी भी बात को तुम इसलिए मत मानो कि वह बहुत पुरानी बात है। किसी बात को तुम इसलिए मत मानो कि बहुत लोग उसको मानते हैं। कहा, तो फिर? किसी बात को तुम इसलिए मानो कि वह तुम्हारी बुद्धि के अनुकूल है। जिसको बहुत लोग मानते हैं वह तुम्हारे लिए उपयोगी नहीं हो सकती क्योंकि महात्मा बुद्ध कहते थे कि समाज में बहुतायत मूर्खों की हुआ करती है। जो बहुत पुरानी बात हो, आज भी तुम्हारे लिए उपयोगी होगी, इसका कोई निश्चय नहीं है। बहुत बड़े आदमी ने कही इसलिए तुम मानो, यह भी उचित नहीं क्योंकि बहुत बड़े आदमी ने तो अपने स्तर से कही है, वह तुम्हारे लिए बुद्धिगम्य है, विवेकगम्य है कि नहीं? जो बुद्धिसम्मत है, वही तुम्हारे लिए धर्म है। बुद्ध ने यह कोई नई बात नहीं कही थी।

उन्होंने वही बात दोहराई जो भगवान् कृष्ण ने गीता में कही है। धर्म बुद्धिगम्य और विवेकगम्य होना चाहिए। आज के सत्संग का इतना सार आप लोग लेकर जाइए- गीता में जो चार बातें भगवान् ने बताई हैं-धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य, धर्म उसका मूल है। बोधात्मक धर्म के प्रकाश में ही वैराग्य और ज्ञान की प्राप्ति होती है क्योंकि -

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।

(रा० 3/16-1)

धर्म का परिणाम विरति है, इस विषय में आप को कल बताया जाएगा। तीन दिन और हैं, तीन दिन में आप को वैराग्य, ज्ञान और ऐश्वर्य- एक-2 करके इन तीनों की व्याख्या समझाई जाएगी।

हरि ऊँ तत्सत्।

गीतोक्त ज्ञान

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना। कल रात्रि के सत्संग में आप लोगों को यह बात समझाई गई थी कि गीता का धर्म सृष्टि में परमात्मा द्वारा मनुष्य के लिए दिया गया सम्पूर्ण जीवन विकास की विधा का अवबोधक है। महाभारत से हमें ज्ञात होता है कि सत्युग का धर्म कर्मकाण्डात्मक नहीं था, योगात्मक था और सभी प्राणी उस परमात्मा के दिव्य विधान के अनुसार ही जीवनयापन करते थे और ध्यानयोग के द्वारा परमात्मा की आराधना करके इस संसार चक्र से विमुक्त होते थे। इसमें आडम्बर के लिए स्थान नहीं था, परतन्त्रता के लिए स्थान नहीं था और परमेश्वर की आराधना में बाह्य उपकरणों के लिए स्थान नहीं था। वह यथार्थ धर्म था जो इस समय लुप्तप्राय हो गया है और मनुष्य अनेक प्रकार की वासनाओं से प्रेरित होकर अनेक प्रकार के कर्मजालों में आबद्ध हो चुका है। वह जो सहज धर्म था, सुगम धर्म था, सुलभ धर्म था और स्वावलम्बी धर्म था, उस धर्म से मानव समाज भटक चुका है। वह धर्म बोधात्मक था, विध्यात्मक नहीं। यह योगात्मक था

कर्मकाण्डात्मक नहीं और उस धर्म की पुनः प्रतिष्ठा करने के लिए ही भगवान् का आविर्भाव हुआ था और इसकी विशिष्टता का अवबोधन कराने के पश्चात् गीता द्वारा प्रतिपादित, वर्णित, उपदिष्ट ज्ञान के विषय में आज मैं आप लोगों को कुछ बातें समझाऊँगा।

सांख्य और योग, ये दो ही गीता के मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं। इनको भगवान् ने स्वयं श्रीमुख से कई बार समझाया है। सांख्य सिद्धान्त में यह बात बताई गई है कि विशुद्ध बुद्धि के प्रकाश में जीवन की पूर्णता की प्रतिष्ठा होती है। उस विशुद्ध बुद्धि के प्रकाश में मनुष्य में चार प्रकार के तत्त्वों का आविर्भाव होता है जिसे धर्म , ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य कहते हैं। इसी से मनुष्य के जीवन की पूर्णता व तृप्ति होती है। मैंने कल आपको गीतोक्त धर्म के विषय में बात समझाई थी। आज गीतोक्त ज्ञान के विषय में बात समझाऊँगा। गीता में ज्ञान की भगवान् ने बड़ी महिमा गाई है। उन्होंने यहाँ तक बात कही कि –

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

(गीता 4/38)

ज्ञान के समान इस जगत् में दूसरा कोई पवित्र तत्त्व नहीं और इतना ही नहीं भगवान् ने कहा कि जिस प्रकार से –

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

(गीता 4 /37)

जैसे प्रज्वलित अग्नि सम्पूर्ण ईंधनों को भस्म कर डालती है, वैसे ही ज्ञान की अग्नि जीव के समस्त कर्मों को भस्म कर देती है। इसका अभिप्राय कि दुनिया के जितने सत्कर्म हैं, उन सम्पूर्ण सत्कर्मों की संज्ञा है यज्ञ और उन सम्पूर्ण यज्ञों में श्रेष्ठतम है ज्ञानयज्ञ।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥

(गीता 4 /33)

भगवान् ने कहा कि मनुष्य के समस्त कर्मों का पर्यवसान ज्ञान में ही है इसलिए ज्ञान से बढ़कर कोई दुनिया में वस्तु नहीं है। ज्ञानाग्नि से पवित्र होकर ही जीव ईश्वरत्व को प्राप्त करता है।

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।।

(गीता 4 /10)

आज से पूर्व भी ऐसे ही मनुष्य ज्ञान रूपी तप के द्वारा पवित्र होकर "मद्भावम्" माने ईश्वरत्व को प्राप्त कर लिए। चौदहवें अध्याय में भगवान् ने कहा -

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥

(गीता 14/2)

मेरे इस ज्ञान का अवलम्बन लेकर के मनुष्य मेरे ऐसे धर्म को प्राप्त कर लेता है और वह सृष्टि के प्रारम्भ में न तो जन्मता है और न प्रलय की अग्नि में दग्ध होता है। यह तो हुआ साधकों के लिए लेकिन जो पतित हैं, अज्ञानी हैं, पापी हैं, उनके लिए क्या है? पापी के विषय में भगवान् कहते हैं दुनिया में ऐसा कोई पापी हो ही नहीं सकता जिसको ज्ञान पवित्र न कर दे।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥

(गीता 4/36)

जितने अब तक पापी हो गये हैं, समस्त पापियों से बड़ा भी यदि कोई पापी है तो - "ज्ञानप्लवेनैव।" ज्ञान रूपी नौका के द्वारा बड़ी सुगमता से तर जाएगा। ज्ञान हमारे पापों का क्या करेगा ? वह पहले ही बता चुके हैं कि जैसे प्रज्जवलित अग्नि समस्त ईंधनों को भस्म कर देती है वैसे ही ज्ञान

की अग्नि तुम्हारे सारे पापों को, कर्मों को भस्म कर देगी। कितनी महिमा है ज्ञान की लेकिन वह ज्ञान प्राप्त कैसे होगा ?

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता 4 /34)

वह ज्ञान तुम्हें यहाँ नहीं, तत्त्वदर्शी ऋषियों की शरण में जाकर प्राप्त होगा- "प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया" महापुरुष के पास जाकर के प्रणिपात करो, अहंकारी बन करके नहीं, विनम्र बन करके। स्वामी बन करके नहीं सेवक बन कर, परीक्षक बन करके नहीं जिज्ञासु बन कर प्रणिपात करो और उनकी सेवा करके परिप्रश्नेन - श्रेष्ठ विधि से उनसे प्रश्न करो, जिज्ञासा व्यक्त करो, वे तत्त्वदर्शी ज्ञानी तुम्हें ज्ञान का उपदेश प्रदान करेंगे।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।

(गीता 4/35)

इस ज्ञान को प्राप्त करके फिर तुम इस प्रकार के मोह को प्राप्त नहीं होओगे। बड़ी महिमा है इस ज्ञान की। इसके पाने की विधि में भगवान् ने बताया -

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता 4 /39)

श्रद्धा, तत्परता, इन्द्रियसंयम, इनके द्वारा इस ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है और ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् तुरन्त परम शान्ति को प्राप्त होता है। ज्ञान ही परम शान्ति को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। भगवान् ने जिस ज्ञान की इतनी महिमा गाई है, उस ज्ञान का स्वरूप क्या है ? दुनिया में क्या कोई ऐसा मनुष्य है जिसको ज्ञान न हो। ज्ञान तो सबको है लेकिन जो

ज्ञान है उस से वह शोक से मुक्त नहीं होगा। उस ज्ञान से तो वह सुखी नहीं होगा बल्कि उसका ज्ञान तो उसके दु:ख में ही हेतु बनता जा रहा है, दु:ख में ही प्रवृत्त करता जा रहा है। क्या बिना ज्ञान के आप संकल्प करते हैं ? जिसका ज्ञान आपको नहीं, क्या उस विषय में आप संकल्प कर सकते हैं ? नहीं। तो आपके कर्म का आधार आपका संकल्प और आपके संकल्प का मूल स्रोत आपका ज्ञान। आप के पास जो ज्ञान है, उसी ज्ञान के अनुसार आप संकल्प करते हैं। संकल्पानुसार आप कर्म करते हैं। कर्मानुसार आप फल भोगते हैं, रोते हैं, दु:खी होते हैं। वह जो ज्ञान आप की गाँठ में है, वह तो दु:ख में ही हेतु बनता जा रहा है। भगवान् कहते हैं यह ज्ञान नहीं पगले! जो ज्ञान तुम्हें है यह ज्ञान तो पशु को भी है पक्षी को भी है।

मार्कण्डेय पुराण में या दुर्गासप्तशती में यह पवित्र संदेश पढ़ने को प्राप्त होता है। वहाँ पर बड़ा विलक्षण प्रसंग आता है। समाधि नाम का वैश्य अपनी स्त्री और पुत्रों द्वारा अपने घर से निकाल दिया गया। उसके पास धन था। धन के लोभ में आकर के उसके पुत्रों ने अपनी माँ से मिल करके साजिश किया और बड़ी बुरी तरह से मार करके उसे निकाल दिया। जव उसे यह ज्ञात हुआ कि यह उसकी हत्या कर देंगे, तो किसी भी प्रकार से प्राण बचाने के लिए वह घर से भाग गया। उसी समय वहां पर एक राजा जिसके मंत्रियों ने धोखा देकर शत्रु राजा से मिल करके उसके राज्य का अपहरण कर लिया था, वह भी राज्य से निष्कासित हो करके वहां आया। वे दोनों जाकर के एक नदी के किनारे पर मिल गये। दोनों दु:खी आदमी आपस में वार्त्तालाप करने लगे। दु:खी आदमी तो चाहता है कि उसके दु:ख को पहचानने वाला कोई आदमी मिले जिससे वह अपनी बात कहे। कहने से दु:ख कम हो जाता है। वे दोनों दु:खी व्यक्ति एक अपने परिवार से निष्कासित, दूसरा अपने राज्य से निष्कासित आपस में बात करने लगे। वैश्य कहता है - राजन्! मैं जानता हूँ, जिस स्त्री को मैंने बड़े प्यार से रखा,

जीवन भर जिसकी सम्भाल की, जिसकी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करना मैंने अपना धर्म समझा और जिन पुत्रों को मैंने बड़े प्यार से पालते हुए बड़ा किया था, जिनके लिए मैंने घोर परिश्रम करके सम्पत्ति इकट्ठा की थी, देखिए! मेरा दुर्भाग्य, उसी स्त्री ने, उन्हीं पुत्रों ने मुझे इस वृद्धावस्था में घर से निकाल दिया। आज मैं दर-दर ठोकरें खा रहा हूँ और इतने पर भी मेरे हृदय से उस स्त्री के प्रति, उन पुत्रों के प्रति कोई अपशब्द नहीं निकलता। अब भी मैं उनके अहित की कल्पना करके काँप जाता हूँ। जिसने मुझे इतना दुःख दिया, उनके प्रति मेरी ऐसी ममता क्यों है ? यह मैं समझ नहीं पा रहा। राजाा ने कहा, भाई, तेरा दुःख तो बड़ा छोटा सा है। मेरा दुःख देख। मैं अपने राज्य से निष्कासित हो गया और यहाँ अब मेरे पास न तो हाथी हैं, न घोड़े हैं, न रथ हैं, न वह राज्य है और न प्रजा है लेकिन यहां बैठे-बैठे मैं यही सोचता हूँ कि जिस हाथी को मैंने दूध पिलाकर पाला था, जिन घोड़ों को मैंने घी पिला कर पाला था, जिस प्रजा की मैंने अपने पुत्रवत् रक्षा की थी, आज वह विदेशी राजा उनके साथ कैसा व्यवहार करता होगा। मैं असहाय होकर जंगल में बैठा हुआ हूँ, फिर भी उन्हीं की चिंता मुझे सता रही है। कारण क्या है ? मैं समझ नहीं पा रहा। दोनों निश्चय करते हैं कि इस विपत्ति का अन्त आपस में वार्तालाप से नहीं होने का। यहाँ पास ही ऋषि रहते हैं, उनका आश्रम है। चलो अपना प्रश्न उनसे करते हैं तो दोनों वह राजा और समाधि वैश्य ऋषि के आश्रम में पहुँच जाते हैं और मेधा ऋषि के सामने उन्होंने अपने प्रश्न रखे। मेधा ऋषि ने कहा कि अरे पगले! तुम यह कहते हो कि तुम्हें यह पूरा ज्ञान है। हम समझते हैं, हम समझदार हैं और फिर भी हमें क्यों उन्हीं की चिन्ता, इतना दुःख भोगना पड़ रहा है। ऋषि कहते हैं कि जितना ज्ञान तुम्हें हैं, इतना ज्ञान तो एक पशु को भी है, इतना ज्ञान एक पक्षी को भी है। ऋषि समाधि नाम के वैश्य से कहते हैं तुमने अपने जीवन में कौन सा ज्ञान का कार्य किया है ? कहा - अपनी स्त्री

की सम्भाल की, अपने बच्चों की सम्भाल की, उनका पालन पोषण किया। ऋषि कहता है–ज़रा उस चिड़िया की तरफ देखो जो अपने अण्डों से निकले छोटे-2 बच्चों के लिए दूर से चारा उठा कर ले आती है और अपने मुख से उठाकर उनके मुंह में डाल देती है। क्या वह चिड़िया अपने बच्चों की सम्भाल नहीं कर रही है ? उन पशुओं को देखो जो अपने बच्चों की रक्षा के लिए अपने से भी प्रबल शत्रु से लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं चाहे मारे ही क्यों न जाएं। हर एक नर अपनी मादा की सम्भाल करता हुआ प्राण तक दे देता है। यदि तूने अपनी स्त्री की सम्भाल की तो कौन बड़ा आश्चर्य कर लिया। यह तो पशु–पक्षी भी करते हैं। ऋषि कहते हैं कि यह ज्ञान तुम्हारे शोक और मोह को नष्ट करने में सक्षम नहीं है। परमात्मा की माया बड़ी प्रबल है

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

(दुर्गा स० 1 /55,56)

वह परमेश्वरी बड़ी प्रबल है। वह बड़े-2 ज्ञानियों को पकड़ करके मोह में डाल देती है, तुम्हारी क्या विसात है ? कहा, प्रभो फिर दुःख से छूटने का उपाय क्या है ? कहा - यदि उस परमेश्वरी का तुम्हें बोध हो जाए, उसका ज्ञान हो जाए, उस माया के वास्तविक स्वरूप को यदि तुम जान जाओ, तब तुम इस शोक से, इस मोह से छूट सकते हो, दूसरा कोई उपाय नहीं। यही बात भगवान् कह रहे हैं गीता के तेरहवें अध्याय में -

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥

(गीता 13/1)

इस शरीर को तो क्षेत्र कहते हैं और जो इस शरीर को जानने वाला, इसको चलाने वाला, इस शरीर का नियन्ता है उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं। इस

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के यथार्थ ज्ञान का नाम ही ज्ञान है -

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥

(गीता 13/2)

भगवान् ने बताया कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान मेरे मत में वही ज्ञान है और उस ज्ञान के प्रकाश में ही मनुष्य इस संसार प्रवाह से विमुक्त हो सकता है, दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जब तलक प्रकृति के यथार्थ स्वरूप का बोध नहीं होता, तब तलक पुरुष तत्त्व का बोध नहीं हो सकता और जब तक जीवन में पुरुष के यथार्थ बोध का उदय नहीं होगा तब तक व्यक्ति कल्याण का भागी नहीं बन सकता।

गीता का ज्ञान क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ से सम्बन्धित ज्ञान है। पुरुष और प्रकृति से सम्बन्धित ज्ञान है। माया और ब्रह्म से सम्बन्धित ज्ञान है। इसको किसी भी नाम से आप कहें। ब्रह्मवादी इसे माया और ब्रह्म कहते हैं। सांख्यवादी इसे प्रकृति और पुरुष कहते हैं। योगवादी इसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ कहते हैं। याद रखो, प्रकृति पुरुष, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, माया-ब्रह्म, क्षर-अक्षर, ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। तुम जिज्ञासु हो, तुम्हारे में जानने की लालसा है। जीव के यथार्थ का यदि विश्लेषण किया जाए तो केवल जिज्ञासा के सिवाय और कुछ नहीं मिलता है क्योंकि जीव का यथार्थ अहं है। इसके सिवा और कुछ कर भी तो नहीं सकते। प्रकृति में तो जिज्ञासा है नहीं कि है ? प्रकृति को जानने की चाह हो सकती है? नहीं ? Because nature is insentient, जो बोध रहित, चेतना शून्य प्रकृति है, इसमें ज्ञान की जिज्ञासा कभी हो ही नहीं सकती। प्रश्न ही नहीं पैदा होता। पुरुष में भी ज्ञान की जिज्ञासा नहीं हो सकती क्योंकि वह तो ज्ञान-स्वरूप है।

ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।

(श्वेता० 6/16)

वह तो विश्व का सृजक है, विश्व का ज्ञाता है, बोध स्वरूप है,

काल का भी काल है, तीनों गुणों से परे है, उसमें कभी जिज्ञासा हो नहीं सकती। जिज्ञासा प्रकृति का स्वरूप नहीं है, जिज्ञासा पुरुष का स्वरूप नहीं है। फिर जिज्ञासा किसका स्वरूप है? शास्त्र किसके लिए है ? यह साधना किसके लिए है? परमात्मा के लिए किसी साधना की जरूरत नहीं है, वह तो स्वयं में पूर्ण है। पूर्ण परमेश्वर के लिए साधना की कल्पना कैसे की जा सकती है? जड़ प्रकृति के लिए साधना की कल्पना कैसे की जा सकती है? यह सारे शास्त्र किसके लिए हैं? जीव के लिए इसलिए जीव का यथार्थ स्वरूप जिज्ञासा है। आप देखें, बच्चा जब पैदा होता है, उसे थोड़ी सी जीभ लगी तो वहीं से उसकी जिज्ञासा शुरु हो जाती है। यह क्या है, वह क्या है? यह क्यों हैं, हरेक बच्चे की आदत है। मनुष्य का बच्चा शैशव काल से हमेशा क्या और क्यों पूछना शुरू कर देता है। सही माने में उस बच्चे के क्या और क्यों का उत्तर उसके माता-पिता नहीं दे पाते। उसका यह जो जिज्ञासु भाव है, वह कभी-2 जबरदस्ती डाँट कर दबा दिया जाता है। चुप रहो बिना मतलब के प्रश्न नहीं किया करो। वह बेचारा डर के मारे चुप हो जाता है, सहम जाता है लेकिन उसका यह यथार्थ स्वरूप नहीं है। सही स्वरूप तो जिज्ञासा है। जब कभी उसे अवसर मिलता है, तब ही किसी महापुरुष की तलाश करता है। पहले जिस क्यों और क्या के विषय में पूछता था, अब वह उस क्यों और क्या के विषय में समझ चुका है इसलिए उसके विपरीत उससे अधिक अब जिस विषय की उसे जिज्ञासा है, अब वह उस विषय में क्यों और क्या पूछने लगता है। यह सृष्टि क्या है और यह सृष्टि क्यों है ? केवल बालक की बात छोड़िए, सामान्य व्यक्ति की बात छोड़िए, ब्रह्मवेत्ता ऋषि जिसे कहते हैं उनके सामने भी यही प्रश्न होते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् के प्रारम्भ में आता है कि ब्रह्मवेत्ता ऋषि भी आपस में बहस करते हैं, चिन्तन करते हैं -

कि कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता

जीवाम् केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।

(श्वेता० 1/1)

आखिर हम लोग जी रहे हैं और हमारा अपना अस्तित्व भी है, लेकिन हम अपने कारण को भी नहीं जानते क्योंकि कारण तो अनन्त होता है, कारण इनफिनेट है। कारण सीमित नहीं होता और कारण दृश्य भी नहीं होता। जब कारण न दृश्य और न सीमित होता है तो हम सब तो सीमित हैं और एक रूप में दृश्य भी हैं फिर हमारा कोई कारण तो होगा? हमारा कारण क्या है ? अनन्त का एक नाम ब्रह्म है। ब्रह्म माने अनन्त जिससे बड़ा और कुछ नहीं। ऋषि कह रहे हैं "किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता ?" हम लोग कहाँ से पैदा हो गए और जीवाम् केन- किसके कारण हम जीवित हैं? क्या इन पदार्थों के कारण जीवित हैं? श्वास आती-जाती है इसलिए जीवित हैं ? यह तो भ्रान्ति की बात है। यह जो आक्सीज़न हम लेते हैं, यह आक्सीज़न तब भी तो रहता है जब मनुष्य का राम नाम सत्य हो जाता है। आक्सीज़न कोई चला जाता है क्या ? ये पदार्थ तो ज्यों के त्यों बने रहते हैं? इन सारे पदार्थों के होते हुए भी मृत्यु हो जाती है। इसका अभिप्राय यह कि जब मृत्यु उन पदार्थों के होते हुए भी हो जाती है तो हमारे जीवन का आधार ये पदार्थ नहीं हैं, कुछ और है जिसके द्वारा हम जीवित हैं। यह वायु के द्वारा जीवित नहीं है, अग्नि व पृथ्वी के द्वारा जीवित नहीं है, अन्न के द्वारा जीवित नहीं है, यह आकाश के द्वारा जीवित नहीं हैं, जो कुछ पदार्थ दिखाई दे रहा है, यह हमारे जीवन का आधार नहीं हो सकता, इन सब की उपस्थिति में ही हमारी मृत्यु भी हो जाती है। यह मृत्यु का चक्र हमें बताता है कि हमारे जीवन का अवश्य ही कोई आधार है और वह अलक्ष्य है। हम सबकी आखिर प्रतिष्ठा किसमें है? यह ऋषियों का प्रश्न है और इस जिज्ञासा की पूर्ति में उन्होंने आपस में चर्चा शुरु की।

एक ने कहा कि हम सब काल से उत्पन्न होते हैं, काल से जीवित

रहते हैं, काल द्वारा पालित होते हैं और काल में ही समाहित होते हैं। ऋषियों ने इस पर तर्क किया कि क्या काल हमारा हेतु हो सकता है? निर्णय लिया कि नहीं काल हेतु नहीं हो सकता। काल तो काल्पनिक है। काल का कोई अस्तित्व नहीं है। काल सापेक्ष है। जो कुछ सापेक्ष है, काल्पनिक है, यथार्थ नहीं है, वह काल हमारा कारण नहीं हो सकता। तो क्या प्रकृति कारण है ? प्रकृति भी कारण नहीं हो सकती। प्रकृति स्वयं में जड़ है। जड़ प्रकृति से चेतन की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती क्योंकि जो कारण में होता है वही कार्य में अभिव्यक्त होता है। यदि प्रकृति में चेतना नहीं है तो हमारे में चेतना कहाँ से आ जाएगी ? इसलिए प्रकृति जो जड़ है, वह हमारा कारण नहीं हो सकती। तो क्या फिर नियति है? नियति कहते हैं परिणाम को, बिना जन्मे हमने कर्म कहाँ से कर लिया ? जब जन्मे ही नहीं तो कर्म कहाँ से कर लिया इसलिए नियति का सिद्धान्त भी व्यर्थ है । कहा – चांस? ऋषियों ने कहा चाँस तो अज्ञानियों की स्वीकृति है। जहाँ बुद्धि का प्रवेश नहीं, वे कहते हैं बाए चाँस हो गया।

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा

भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या।

(श्वेता० 1/2)

फिर यह जीवात्मा है, यही अपना कारण है। नहीं, यह अपना कारण कैसे हो सकता है ? जब इसका कोई समाधान नहीं हुआ तब ऋषियों ने कहा कि ऐसे पता नहीं चलेगा। चेतना का जहाँ से जागरण हुआ, वहाँ पहुँचे। फिर उसके स्रोत को अपन देख पाएँगे। उसके लिए क्या किया जाए ?

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् ।

(श्वेता० 1/3)

तब वे ध्यान योग में प्रवृत्त हुए। बाहर की इन्द्रियों के दरवाज़े बंद

किए और जहाँ से चेतना का आविर्भाव होता है, उस चेतना के मूल को पकड़ने चल पड़े। अन्तर्मुखी हो करके जब ब्रह्मचक्र में पहुँचे तो उन्होंने -

देवात्मशक्तिं स्वगुर्णनिगूढाम्।

उस परमात्मा की महान् शक्ति का दर्शन किया। यह भारतीय दर्शन है यह कल्पना का परिणाम नहीं है। इसलिए दर्शन का अनुवाद अंग्रेजी में कोई शब्द नहीं है। फिलॉस्फी माने दर्शन नहीं होता। फिलॉस्फी ग्रीक भाषा का शब्द है। फिलॉस्फी माने होता है ज्ञान जिसे सौफिया कहते हैं और फिलो माने ग्रीक में होता है Love अर्थात् प्रेम अत: फिलॉस्फी का अर्थ Love for knowledge. और Philosopher का अर्थ होता है Lover of knowledge ज्ञान का प्रेमी। दर्शन किसे कहते हैं ? अन्तर्मुखी होकर समाधि अवस्था में जिस परम सत्य का साक्षात्कार हुआ है, जो देखा गया है, उस दृष्ट तत्त्व को दर्शन कहते हैं और वह अन्तर्मुखी प्रज्ञा का प्रकाश है। यह काल्पनिक नहीं है, वहाँ ज्ञान का प्रेम नहीं है, वहाँ तो ज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव है। भारतीय ऋषियों ने ध्यान की उच्चतम अवस्था में पहुँचकर उस परमात्मा की शक्ति को देखा, उसका दर्शन किया और उसी को यथार्थ ज्ञेय तत्त्व घोषित किया। गीता में भगवान् ने उसे ज्ञेय बताया -

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥

(गीता 13/12)

मेरे कहने का अभिप्राय कि वह ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता- इन तीनों का जो अस्तित्त्व है, वह जीव से है इसलिए जीव का यथार्थ स्वरूप है जिज्ञासा और जीव को कहा गया जिज्ञासु। यह जीव स्वभावत:, स्वरूपत: जिज्ञासु है। यह जिज्ञासा हमें ऋषियों के जीवन में भी दिखाई देती है, जनसामान्य की तो बात ही क्या है। इस जिज्ञासा की पूर्ति तब तलक नहीं हो सकती जब तक जीव का भटकना बंद नहीं हो जाता। इस जिज्ञासा की

पूर्ति तब होगी, जब यह उस परम तत्त्व का साक्षात्कार करेगा। जब तक उसका दर्शन नहीं होता, जब तलक उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं होता, जब तक उसका अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता, तब तक जीव का भटकना, उसकी जिज्ञासा का अन्त नहीं होता इसलिए वह परम ज्ञान है, सामान्य ज्ञान नहीं। सामान्य ज्ञान तो जीव के पास है। वह जीव का स्वरूप है, जीव का स्वभाव है लेकिन यह अल्प ज्ञान है इसीलिए जीव को अल्पज्ञ कहते हैं। जीव की एक संज्ञा अल्पज्ञ है। अल्पज्ञ माने थोड़ा जानने वाला। जीव के पास जो अल्पज्ञता है, क्या इस अल्पज्ञता के धनी को सर्वज्ञता प्राप्त हो सकती है ? यह प्रश्न होता है। जी हाँ, सर्वज्ञता को प्राप्त करने में अल्पज्ञता ही हेतु होती है। शास्त्रकारों ने बताया जैसे थोड़ी सी अग्नि से, ईंधन प्रदान करने पर विशाल अग्नि का आविर्भाव हो जाता है, इसी प्रकार इस अल्पज्ञान से इसको यदि ईंधन प्राप्त हो जाए तो विशाल ज्ञान की अभिव्यक्ति हो जाती है। साधन प्राप्त हो जाए और अल्पज्ञान का आप यदि सदुपयोग करें तो आप सर्वज्ञ हो सकते हैं।

सः सर्वज्ञ सर्वविद् भवति।

उपनिषद् कहती है कि वह व्यक्ति सर्वज्ञ और सब कुछ का जानने वाला हो जाता है। किसके द्वारा ? अल्पज्ञान के द्वारा। गीता में बड़ा सुन्दर सन्देश। गीता के कुछ ऐसे श्लोक हैं जिनका चिन्तन करते हुए मैं सही में विमुग्ध हो जाता हूँ। भगवान् कहते हैं, ये सारे जीव व्यापारी हैं लेकिन असली व्यापारी इनमें से कोई-2 हो पाता है। कहा, व्यापारी का लक्षण क्या है? कहा, प्राप्त धन का प्रयोग करके उसके बदले में उससे कई गुणा अधिक धन प्राप्त करने की प्रक्रिया का नाम व्यापार है और हरेक जीव व्यापारी है। वह यही चाहता है कि उसके पास जो अल्प साधन हैं, इसको लगा लूं और उसके बदले में इससे अच्छे साधन प्राप्त करूँ। भगवान् कहते हैं कि यह व्यापारी तो है लेकिन सही व्यापारी नहीं हैं। कुशल व्यापारी तो

वह है जो अल्प साधन से अमित, अक्षय धन को प्राप्त कर ले लेकिन जो नालायक या बुद्धिहीन व्यापारी है वह तो वह भी उसके बदले में गवा देता है। तुलसीदास जी ने इसके विषय में कहा –

काँच किरिच बदले ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं ॥

(रा० 7/121-6)

यह एक ऐसा भोला मूर्ख व्यापारी है कि इसके पास जो रत्न है, इसको लगा करके उसके बदले में काँच के टुकड़े बटोरता है। कितना नामसझ है। कितना अज्ञानी है। मनुष्य के पास धन क्या है ? आपके पास श्वास रूपी धन है। श्वास बहुत महत्व का है और यह 24 घंटे में इक्कीस हज़ार छः सौ बार आपके अन्दर जाता है, आता है। यह श्वास की प्रक्रिया है। 21600 श्वास एक दिन में चौबीस घंटे में एक स्वस्थ व्यक्ति लेता है। उसको यदि डिवाईड किया जाए, बांटा जाए तो एक घंटे में 900 श्वास होता है। आप यदि किसी काम को करते हैं और नौ सौ श्वास के बदले में जो आप पाते हैं एक घंटे में वह सौदा आपके लिए सस्ता पड़ता है या मंहगा? नौ सौ श्वास दे करके जो आप ने लिया है बदले में, वह घाटे का सौदा है या लाभ का? आपका वह व्यापार सही है या गलत ? क्या कहेंगे आप ? आपके पास इन्द्रियाँ हैं, शरीर है, मन है, बुद्धि है, अहं भाव है, कर्म के सारे साधन आपके पास उपलब्ध हैं और इस कर्म के साधन को, अधिकार को, आप जब प्रयोग करते हैं इस प्रकार के कर्मों के लिए जो कि तुच्छ परिणाम देने वाले हैं तो उस समय आप अपनी सम्पत्ति का जो आपके पास उपलब्ध है, उसका सही माने में प्रयोग करते हैं या गलत, सोचिए तो। आप अच्छे व्यवसायी कहे जाएँगे या नालायक? भगवान् कहते हैं, अच्छा व्यवसायी वह है जो इन नाशवान् मिले हुए साधनों का प्रयोग करके अविनाशी को प्राप्त किया है। उस अविनाशी तत्त्व को प्राप्त करने के लिए उसके पास जो साधन रहा है, वह नाशवान् था। कोई बता सकता है

कि अमुक महात्मा ने अविनाशी साधन द्वारा अविनाशी को पा लिया? साधन जिस महात्मा के पास, जिस भी महापुरुष के पास है, वह सब नाशवान है, प्राकृतिक है और इन्हीं नाशवान साधनों के प्रयोग से उसने अविनाशी तत्त्व को प्राप्त किया है। वही सही व्यापारी है, अच्छा वा कुशल व्यापारी है -

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥

(गीता 2/41)

उस श्लोक में भगवान् ने इस रहस्य का उद्घाटन किया है। मेरे कहने का अभिप्राय कि आपके पास जो अल्पज्ञान है, इसी अल्पज्ञान का यदि आप सदुपयोग करें तो आप इसी के बल से, इसी के प्रकाश से सर्वज्ञ हो सकते हैं और सर्वविद् हो सकते हैं। आज तक ऋषियों ने इसी परिपाटी का अवलम्बन लिया है और इसी से उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त कर ली है। आप भी प्राप्त कर सकते हैं, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं लेकिन आप अपने इस अल्पज्ञान का दुरुपयोग करते हैं। अपने इस अमूल्य प्राण को व्यर्थ में गवाते हैं। किसके लिए ? पेट और परिवार के लिए। इसके आगे आप सोचते ही नहीं। सोच किस की है ? पेट की। इसके आगे परिवार की। इसके आगे की सोच बनती ही नहीं और यह भी कहते हैं हम सब कुछ जानते हैं, हम सब कुछ कर सकते हैं लेकिन इससे ऐसे बंध गए हैं कि यहां से निकलना ही मुश्किल हो गया है इसलिए भगवान् कहते हैं यथार्थ ज्ञान तो प्रकृति और पुरुष का ज्ञान है। यथार्थ ज्ञान तो उस माया और ब्रह्म का ज्ञान है। यथार्थ ज्ञान तो शरीर और शरीरी का है। यदि इस यथार्थ ज्ञान को तुम प्राप्त कर लो तो तुम इसी जीवन में यहीं रहते हुए भगवद्भाव को प्राप्त कर लोगे, ईश्वरत्व को प्राप्त कर लोगे, भगवद्स्वरूप को प्राप्त कर लोगे -

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।।

बहुत से महापुरुष ज्ञानरूपी तप से पवित्र हो करके मेरे भाव को प्राप्त कर चुके हैं और प्रत्येक प्राणी इसे पा सकता है।

भगवान् ने गीता में जिस ज्ञान की महिमा का वर्णन किया है, वह ज्ञान मनुष्य की आन्तरिक मांग है, वह दृश्य और अदृश्य, कार्य और कारण के यथार्थ स्वरूप को जानने की अभीप्सा है। इस अभीप्सा को पूर्ण करके ही आप तृप्त हो सकते हैं, आप अपने आप में सन्तुष्ट हो सकते हैं। इसके सिवाय दूसरा और कोई रास्ता नहीं है इसलिए गीतोक्त ज्ञान जो है, वह प्रकृति और पुरुष का, ब्रह्म और माया का, क्षर और अक्षर का, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का यथार्थ ज्ञान है और इसी ज्ञान की भगवान् ने महिमा गाई है। इस ज्ञान को प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही अपने समस्त कर्मों को उसी प्रकार से भस्म कर देता है जैसे कि अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है। इसी ज्ञान का अवलम्बन लेने वाला व्यक्ति महान् से महान् पापी होता हुआ भी संसार सागर को पार कर जाता है। भगवान् ने यहाँ तक बताया कि इस ज्ञान का अवलम्बन लेने वाला व्यक्ति पुन: संसार के व्यामोह में नहीं पड़ता इसलिए गीता के ज्ञान को आप समझिए। वह आत्मा और अनात्मा का ज्ञान है। उसी की व्याख्या पतंजलि ने योगदर्शन में की है। इसी की व्याख्या सारी उपनिषदों में है और इसी की व्याख्या वेद का सार तत्त्व है। इसलिए गीता के इस ज्ञान के स्वरूप को आप समझिए और उसको प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए। ज्ञान के पश्चात् गीता का तीसरा विषय है वैराग्य और उस वैराग्य की यथार्थ रूपरेखा जो कुछ गीता स्वीकार करती है उसके विषय में मैं कल आपको बताऊँगा।

हरि ॐ तत्सत्।

गीतोक्त-वैराग्य

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सबके लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यही मेरी आन्तरिक शुभकामना! कल के प्रसंग में मैंने संक्षेप रूप से गीता का जो प्रतिपाद्य विषय ज्ञान है, उसके सम्बन्ध में कुछ बातें बताई। आज आप लोगों को ज्ञान का सहयोगी और ज्ञान के परिणामस्वरूप जो विराग शब्द है, गीता में वह किस रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, इस विषय को समझाऊँगा। जैसा कि पूर्व में मैंने आप लोगों को बताया है, गीता योगबुद्धि की प्रधानता का उपदेश देती है। योगबुद्धि के द्वारा चार महान् तत्त्वों का आविर्भाव होता है जिसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य कहते हैं। गीता में इन चारों को किस प्रकार से प्रभु ने समझाया है, इन चारों के सम्बन्ध में प्रभु की क्या दृष्टि है, यही मेरे इन दिनों के सत्संग का मुख्य विषय है। विशुद्ध बुद्धि के प्रकाश में जिस धर्म की प्रतिष्ठा और ज्ञान का उदय होता है, उसका क्या स्वरूप है, मैं आपको बता चुका हूँ। आज मैं आपको यह बताऊँगा कि विशुद्ध बुद्धि के प्रकाश में विराग के किस स्वरूप की प्रतिष्ठा होती है, जिसका वर्णन भगवान् ने गीता में किया है, उसको आप लोग समझ लें।

वैराग्य शब्द का अर्थ होता है विगत राग होना। राग शब्द का अर्थ होता है आसक्ति और विराग शब्द का अर्थ होता है अनासक्ति। विराग शब्द का स्वरूप क्या है ? कहीं त्याग को ही विराग तो नहीं कहते। इस सम्बन्ध में गीता का कथन है कि त्याग का नाम विराग नहीं है। कई बार ऐसा होता है कि त्याग के पश्चात् भी उस त्यक्त पदार्थ के प्रति राग बना रहता है। वैराग उसे कहते हैं जहाँ पदार्थ है लेकिन उसके प्रति राग न हो क्योंकि तात्त्विक दृष्टि से मनुष्य कभी भी प्राकृतिक पदार्थों से दूर नहीं हो सकता और न किसी पदार्थ का त्याग ही कर सकता है। इसलिए कि सृष्टि में जो कुछ पदार्थ हैं, वे पंच महाभूतों से अभिभूत हैं और मनुष्य का शरीर पंच महाभूतों का ही परिणाम है। जब तलक मनुष्य पंचभूतात्मक शरीर में निवास करता है, तब तलक उसे उन महाभूतों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। पंच महाभूतों के त्याग से अपने शरीर की यात्रा को वह कभी भी पूरा नहीं कर सकता इसलिए पदार्थों का त्याग कठिन नहीं, बल्कि असम्भव है। गीता की भाषा में पदार्थों का त्याग नहीं, पदार्थों के प्रति जो राग है, उस राग का त्याग किया जा सकता है। पदार्थ बन्धन में हेतु नहीं है, पदार्थ के प्रति जो राग है, वह बन्धन में हेतु है। राग माने अनुरक्ति, राग माने प्रीति, राग माने आसक्ति, ये राग शब्द के अर्थ हैं। जिन पदार्थों से मनुष्य को सुख मिलता है, उनके प्रति उसकी जो चाह उत्पन्न होती है, उस चाह का नाम ही राग है।

सुखानुशयी रागः।

(यो० सू० 2/7)

राग ही मनुष्य के जीवन में इच्छा और कामना को जन्म देता है।

सङ्गात्संजायते कामः।

(गीता 2/62)

किसी भी पदार्थ के प्रति आसक्ति, अनुरक्ति, प्रीति को राग कहा

जाता है और उसी राग के द्वारा मनुष्य इस पदार्थ में बन्धता है। भगवान् ने कहा पदार्थ तो ज्यों का त्यों बना रहेगा, वह तो प्रकृति का परिणाम है। तुम उसमें राग करो तब भी पदार्थ रहेगा, न करो तब भी रहेगा। भोजन करने से भूख शान्त होगी, जल पीने से तृष्णा शान्त होगी, अग्नि का सेवन करने से शीत दूर होगा, ये जो प्राकृतिक नियम हैं, इनमें तुम राग करो तब भी इनका वही परिणाम होगा, राग न करो तब भी वही परिणाम होगा। व्यर्थ में इसमें राग करके बन्धन में क्यों बंधते हो। जो वस्तु जिंस प्रकार से रहने वाली है, वह उसी प्रकार से रहेगी। प्रकृति के नियम को न तो तुम्हारा राग बदल सकता है, न तुम्हारा प्रेम बदल सकता है, न तुम्हारी आसक्ति बदल सकती है। शरीर में राग करो तब भी बाल्यावस्था के बाद युवावस्था, युवावस्था के बाद प्रौढ़ावस्था आयेगी ही। प्रौढ़ावस्था में राग करने वाला व्यक्ति वृद्धावस्था से पीड़ित होता है। वृद्धावस्था के चिन्ह्न से ही पीड़ित हो जाता है। राग रहित व्यक्ति के लिए शरीर की चारों अवस्थाएं बदलती रहती हैं, उससे उसको कोई पीड़ा नहीं होती। वह देखता है कि यह तो प्रकृति का नियम है, तदनुसार चल रहा है। जिस प्रकार से कौमार, यौवन, जरा हैं, उसी प्रकार से एक दिन मृत्यु भी आ जाएगी।

धीरस्तत्र न मुह्यति।

(गीता 2/13)

भगवान् कहते हैं कि धीर पुरुष उसमें मोहित नहीं होता लेकिन जो अधीर हैं, रागी हैं, वे उससे दु:खी होते हैं इसलिए राग आसक्ति को कहते हैं और आसक्ति मन की वृत्ति है जो कि अज्ञानता के परिणाम से उत्पन्न होती है। राग का मूल हेतु है अहंभाव और अहंभाव का मूल हेतु है अज्ञान। अज्ञान से अहं, अहं से मम और मम से राग, यह क्रम है। इसका नाश कैसे हो सकता है ? यदि अज्ञान का नाश हो जाए तो राग का नाश हो सकता है। बिना अज्ञान के नाश के राग का नाश नहीं हो सकता। जीवन में

दु:ख का कारण पदार्थ नहीं है, पदार्थ में राग है। पदार्थ के जिस स्वरूप में राग है, वह स्वरूप परिवर्तनशील है, नित्य नहीं है। जब पदार्थ का वह स्वरूप विकृत हो जाएगा, वह रूप बदल जाएगा तो राग के नाते तुम्हें दु:ख होगा। गीता का दृष्टिकोण देखिए। तत्त्वत: यहाँ कुछ भी नाशवान नहीं है। तत्त्वत: सब अविनाशी है, सब नित्य है, सब शाश्वत है लेकिन स्वरूपत: आविर्भाव और तिरोभाव की प्रक्रिया चलती रहती है। भगवान् कहते हैं तुम्हारे सामने यह सारा जो दृश्य जगत है यह अव्यक्त से अभिव्यक्त हुआ है। अव्यक्त माने Formless causal energy से व्यक्त हुआ है और इसका अन्त पुन: Formless अवस्था में हो जाएगा -

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

(गीता 2/28)

इसमें गया कुछ नहीं, निकला कुछ नहीं, नष्ट कुछ नहीं हुआ। अदृश्य से दृश्य हुआ, दृश्य से पुन: अदृश्य हो गया। तुम्हारा राग तो दृश्य में हो गया, दृश्य में तुम्हारी आसक्ति हो गई तो तुम्हारी आसक्ति मात्र होने से वह दृश्य हमेशा दृश्य तो नहीं रह सकता। वह तो अदृश्य की अभिव्यक्ति मात्र है और उसकी अन्तिम गति अदृश्य में ही है इसलिए तुम्हारा राग दु:ख के सिवाय तुम्हें कुछ नहीं दे सकता। गीता हमेशा अनासक्ति का पाठ पढ़ाती है लेकिन आसक्ति रहित होना इतना सरल तो नहीं है। इसके लिए दो विधियां समझाई गई हैं। आसक्ति को दूर करने के लिए एक विधि है - तुम्हारा मन आसक्ति रहित नहीं होता तो जिस पदार्थ में तुम्हारी आसक्ति है, उस पदार्थ के गुण-दोष का पहले विश्लेषण करो, गुण-दोष का विश्लेषण करते हुए तुम्हारी आसक्ति स्वत: समाप्त हो जाएगी। यह सांख्य बुद्धि का रास्ता है - Analytical process. you will use your wisdom and will try to analyse that thing and one day you will

reach up to that cause and cause is infinite & infinite is formless. Automatically your attachment will go. उसके लिए आपको कुछ नहीं करना पड़ेगा। यह सांख्य का ऐसा प्रोसेस है कि राग का जो आश्रय है, राग का जो मूल हेतु है, उस पदार्थ के गुण-दोष का निरूपण करो, एनालाईस करो। जैसे शरीर में तुम्हें राग है। शरीर के प्रत्येक अंग का तुम विश्लेषण करो। तुम्हें मिलेगा कि यह शरीर केवल परमाणुओं का संघात है और कुछ नहीं है। शरीर अंगों का समुदाय है, अंग टिशु का समुदाय है। टिशु सैल का समुदाय है, सैल परमाणुओं का समुदाय है, परमाणु एलेक्ट्रान, प्रोटान,न्यूटान का समुदाय है और वे जो तीनों तत्त्व हैं, ये एनर्जी के अभिव्यक्ति मात्र हैं और Energy is beyond your perception beyond your vision. वह ऊर्जा जो है, उसे न तो तुम देख सकते हो, न जान सकते हो। केवल उसके कार्य को देखकर अनुमान लगा सकते हो "देट ईज़" इसलिए हमारी भाषा में इसे अव्यक्त कहते हैं। भगवान् ने कहा ये सारे जो रूप दिखाई दे रहे हैं, ये अव्यक्त से व्यक्त हुए हैं और आज का वैज्ञानिक यही समझा रहा है कि जितना दृश्य तुम देख रहे हो, यह तो अव्यक्त एनर्जी का परिणाम है। Matter is nothing but is that eternal or permanent ? Is that perpetual ? No. क्या वह नित्य है, शाश्वत है, ऐसा ही बना रहेगा? बिल्कुल नहीं। That is changeable और यह भी नहीं यह बहुत दिनों बाद चेंज होने वाला है। चेंज ईज़ दी नेचर ऑफ नेचर। यह जो परिवर्तन है, यह तो नेचर का स्वभाव है, प्रतिपल परिवर्तित हो रहा है। "सर्वं क्षणिकं" का जो उपदेश है वह बौद्ध सिद्धान्त का नहीं, वह सांख्य सिद्धांत का है। यह सांख्य की विचारधारा का, प्रकृति के यथार्थ रूप का विवेचन है। बौद्धों ने इसे स्वीकार कर लिया।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि एक तो यह विधा है कि

जिस पदार्थ में तुम्हारा राग है, उस पदार्थ का विश्लेषण करो और करने पर तुम्हें लगेगा कि उस पदार्थ का तो अस्तित्त्व ही नहीं है। मैंने एक पद लिखा है अपनी उस अवस्था में -

स्थूल तन है पंचभूतों से बना जाना गया,
सत रज मिलाकर इन्द्रियों का तान भी ताना गया।
चाचरी अनेकों भान्ति की है, वासना कारण तहाँ,
ये कार्य माया के सभी मैं ही नहीं, मेरा कहाँ॥

मैं का ही पता नहीं लगेगा तुम्हें तो मेरा का अस्तित्त्व कहाँ रह जायेगा। सांख्य के प्रोसेस से जब तुम अपने राग के ओब्जेक्ट पर चिन्तन करोगे तो तुम्हें उसका अस्तित्त्व ही नहीं मिलेगा, अपने आप राग समाप्त हो जाएगा।

दूसरी योग बुद्धि की प्रक्रिया है। योग बुद्धि की प्रक्रिया इससे सरल और सुगम है। तुम जिस नाते इसमें राग करते हो, इससे यदि और कोई महत्वपूर्ण मिल जाए तो ? सुन्दरता के नाते यदि तुम किसी में राग करते हो तो उससे अधिक सुन्दर वा समस्त सौन्दर्य का जो स्रोत है, वह यदि तुम्हें मिल जाए तो क्या करोगे ? मनुष्य की ऐसी प्रवृत्ति है कि जब उसके सामने कभी उत्तम की बात आती है तो उसके पास जो है, उसका वह त्याग कर देता है। प्राप्त से अधिक प्राप्ति की अकांक्षा में मनुष्य प्राप्त का त्याग करता है। भगवान् कहते हैं कि इस सृष्टि में जितने तुम्हारे राग के साधन हैं, उन समस्त साधनों की सत्ता तो मेरे से है- रूप की, रस की, गन्ध की, शब्द की और स्पर्श की- ये पाँच ही हैं न ?

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।

(गीता 7/8)

हे कौन्तेय! रस का अस्तित्त्व मेरे से है और रूप का अस्तित्त्व ? प्रभाऽस्मि! रूप का अस्तित्त्व भी मेरे से है। जितने गोचरमय पदार्थ हैं

जिनमें रूप का अस्तित्त्व होता है, वे मेरे से हैं और शब्द का अस्तित्व ?

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥

(गीता 7/8)

समस्त वेदों में प्रणव मेरा रूप है। आकाश का गुण शब्द है वह भी मेरे से है। "पौरुषं नृषु" - मनुष्यों में जो पौरुष है, वह भी मेरा स्वरूप है, वह मैं हूं। पौरुष किसे कहते हैं ? मैथुनकाल में जिस तत्त्व में आपको सुख की अनुभूति होती है, उस तत्त्व का नाम है पौरुष। इसको बीज कहते हैं और अंग्रेजी में सीमन कहते हैं। नारी में इसे रज कहते हैं। भगवान् कहते हैं कि वह मेरा स्वरूप है। मेरे से भिन्न उसकी कोई सत्ता नहीं है। जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि समस्त भोग्य पदार्थों का स्वरूप परमात्मा है तो तुम इन पदार्थों में आसक्ति क्यों करते हो ? भगवान् कहते हैं मेरे में आसक्ति क्यों नहीं कर लेते ?

मय्यासक्तमनाः पार्थ ।

(गीता 7/1)

मन को मेरे में आसक्त कर ले। योग के मार्ग में, योग बुद्धि के प्रकाश में, समस्त विषयों के परम आश्रय जो प्रभु हैं, उनमें अनुरक्ति की जाती है जिससे संसार से अनासक्ति अपने आप हो जाती है। सांख्य की दृष्टि में इन सांसारिक पदार्थों के विश्लेषण से, उनके गुण, दोष के निरूपण से उनका अस्तित्व ही विलीन हो जाता है इसलिए स्वतः आत्म स्मृति हो जाती है। सांख्य शास्त्र की दृष्टि से जगत से वैरागी हो करके आत्मा में अनुराग हो जाता है और योग शास्त्र की दृष्टि से जगत का त्याग करके परमात्मा में अनुराग हो जाता है। मैंने एक दिन बताया था आपको कि आत्मा और परमात्मा कहने के लिए दो अलग-2 हैं लेकिन तत्त्वतः दोनों एक हैं इसलिए भगवान् कहते हैं कि राग तो तुम्हारी जिन्दगी को नष्ट करने वाला है और तुम्हारे जीवन को पतन में ढकेलने वाला है, इससे तुम

सावधान हो जाओ। राग का अस्तित्व रहता कहाँ पर है ? भगवान् ने कहा-

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेतौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता 3/34)

इन्द्रियां और इन्द्रियों के विषयों में राग और द्वेष स्थित हैं, व्यवस्थित हैं, निहित हैं और जो समझदार लोग हैं, उन दोनों लुटेरों को अच्छी प्रकार से जान करके इनके वश में नहीं होते -

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

(गीता 2/64)

यदि राग-द्वेष से रहित हो करके इन पदार्थों का तुम प्रयोग करते हो तो पदार्थ तुम्हारे लिए बन्धन के हेतु नहीं होंगे। जैसे नदी पर पुल नदी को पार करने के लिए बनाया जाता है, वहां पर महल बनाने के लिए नहीं। महान् सागर के ऊपर, सरिता पर बने हुए पुल से अपने आपको पार ले जाओ। यह तो आप सभी जानते हैं कि सरिता व नदी के पुल पर जब खड़े होते हैं तो कितना अच्छा लगता है, देखने में कितना सुन्दर होता है। आप लोगों में से कभी कोई ऋषिकेश गया हो तो लक्ष्मण झूला का पुल है, राम झूला का पुल है, वहाँ जाकर खड़े होओ, कितना सुन्दर लगता है। किसी भी नदी के पुल पर बीच में खड़े हो जाओ तो बड़ा सुहावना लगता है। हवा भी अच्छी लगती है, दृश्य भी सुन्दर दिखाई देता है लेकिन वह पुल पार जाने के लिए है, वहाँ पर महल बनाने के लिए नहीं है कि वहाँ सुन्दर लगता है तो वहीं तुम रह जाओ। अभिप्राय यह है कि इसी प्रकार से इस संसार सागर से पार जाने के लिए परमात्मा ने यह प्रकृति का पुल बनाया है। जन्म-मरण के प्रवाह से मुक्त होने के लिए तुम्हें यह मानव शरीर यह प्रकृति का पुल मिला है। यह पुल पार जाने के लिए है यहाँ पर महल

बनाकर निवास करने के लिए नहीं है। जब तुम इस शरीर में आसक्त हो जाते हो तो इसका अभिप्राय यह होता है कि तुम इसमें हमेशा रहना चाहते हो जो कि असम्भव है। गीता यह बताती है कि राग ही तुम्हारे लिए दुःख का हेतु है और राग का जन्म होता है अस्मिता से, अहं से।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

(गीता 2/62)

जब मनुष्य विषयों का चिन्तन करता है तो उसे उनमें आसक्ति वा राग उत्पन्न हो जाता है। चिन्तन क्यों करता है? अहं के नाते, भोग की वृत्ति के नाते इसलिए उसके पतन में वह हेतु हो जाता है। फिर यह बात याद रख लो मेरी कि पदार्थ की उपस्थिति तुम्हारे लिए न तो दुःख का कारण है और न बन्धन का। तुम्हारे न चाहने से उस पदार्थ की उपस्थिति का अभाव नहीं हो सकता। यदि तुम हिमालय में चले जाओ तब भी वहाँ पंच तत्त्व मिलेंगे - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। यदि तुम दिल्ली के चांदनी चौक जो सबसे व्यस्त स्थान है, वहाँ अगर खड़े हो जाओ तो वहाँ भी तुम्हें पाँच ही तत्त्व मिलेंगे, छठा तत्त्व नहीं मिलेगा। जब पाँच तत्त्व सभी जगह हैं, तुम त्याग किसका करोगे? यह केवल तुम्हारी भ्रान्त बुद्धि का ही परिणाम है कि एक जगह तुम अपने को आसक्त समझते हो, दूसरी जगह अनासक्त समझते हो कि वहाँ जाने से हम आसक्ति से मुक्त हो जाएंगे। कहीं भी जाने से आसक्ति से मुक्त नहीं हो सकते। महाराज जनक ने शुकदेव को यही समझाया था कि यदि तुम्हारी कौपीन, तुम्हारा दण्ड, तुम्हारा कमण्डल तुम्हें नहीं बाँध सकता तो हमें यह सारा साम्राज्य नहीं बाँध सकता क्योंकि जिन तत्त्वों से तुम्हारा दण्ड, कमण्डल और कौपीन बना हुआ है, उन्हीं तत्त्वों से हमारा यह सारा साम्राज्य बना हुआ है। यदि तत्त्वों में बाँधने की शक्ति निहित है वा बाँधने का गुण निहित है तो वे तत्त्व तो तुम्हारे पास भी हैं, तुम्हें वे बाँधेगे ही-

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

(गीता 7/4)

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह अष्टधा प्रकृति का स्वरूप है। प्रकृति के आठ रूप हैं इसलिए इसे अष्टधा प्रकृति कहा गया है। इसी अष्टधा प्रकृति के माध्यम से ही पराप्रकृति जो चेतना स्वरूप है, उसकी अभिव्यक्ति हो रही है, जीव की अभिव्यक्ति हो रही है। जीव ही नहीं, अव्यक्त ब्रह्म की अभिव्यक्ति भी तो इसी के माध्यम से होती है। यदि अष्टधा प्रकृति न हो तो कोई ब्रह्म को जान सकता है क्या? ब्रह्म का अस्तित्त्व है इसका पता लग सकता है क्या? बिल्कुल नहीं इसलिए तो ऋग्वेद कहता है -

एतावानस्य महिमा तो ज्यायांसी पूरूषः।

यह उसकी महिमा है। महिमा से ही महिमावान् को जाना जा सकता है। जैसे अग्नि के प्रज्जवलित होने पर ही अग्नि के यथार्थ स्वरूप का बोध होता है। बिना इंधन के अग्नि न आज तक किसी ने देखी है और न कोई देखेगा। यह तो आप लोग जानते हैं न? बिना इंधन के जैसे अग्नि का आविर्भाव नहीं हो सकता, ऐसे ही बिना अष्टधा प्रकृति के आत्मा का व परमात्मा का आविर्भाव नहीं हो सकता। बिना अष्टधा प्रकृति के कोई परमात्मा को नहीं जान सकता, नहीं समझ सकता इसलिए अष्टधा प्रकृति परमात्मा का अवबोधन कराती है। यह परमात्मा की महिमा है और उसी को भगवान् ने गीता के सातवें अध्याय में कहा -

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥

(गीता 7/5,6)

मेरे कहने का अभिप्राय कि पदार्थों से कभी तुम अलग नहीं हो सकते। असम्भव है। हाँ, पदार्थों में राग सहज नहीं है। मेरी एक बात समझ लो। यदि पदार्थों में राग सहज हो फिर तो तुम्हें उससे छुटकारा मिल ही नहीं सकता। फिर उसके लिए उपदेश हो ही नहीं सकता। राग उसमें सहज नहीं है। फिर ? राग क्यों उत्पन्न हो जाता है ? अज्ञानता के नाते। अज्ञानता में अहं वा अस्मिता का आविर्भाव होता है, अस्मिता से राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं, राग और द्वेष से अभिनिवेष होता है। अविद्या से अस्मिता। अविद्या माने अज्ञान। अज्ञान से अस्मिता। अज्ञान माने विपरीत ज्ञान। अस्मिता माने अहंभाव, मैं पना और मैं पना से राग और द्वेष। जहाँ पर राग और द्वेष है, मैं पना है, वहीं भय आ गया - मृत्यु का भय। भय तीन कारणों से आता है - एक तो जिसमें राग हो गया है, उसके वियोग की सम्भावना से भय। दूसरा जिसमें द्वेष है उसके संयोग की सम्भावना से भय। जिसको तुम चाहते हो, वह चला न जाए कहीं इसका भय बना रहता न? राग और द्वेष का मूल स्रोत है मैं, मैं के अभाव की सम्भावना से भी भय उत्पन्न हो जाता है। कहीं मैं मर न जाऊँ। मैं का ही नाश न हो जाए तो मैं के न होने का भय। मैं के न होने का भय माने मृत्यु का भय। इस तीन प्रकार के भय को अभिनिवेश कहते हैं। पतंजलि ने कहा ये पाँचों क्लेश हैं और इन पाँचों क्लेशों का मूल क्या है ? उन्होंने कहा -

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषाम्।

(यो० सू० 2/4)

"उत्तरेषाम्" माने ये बाद के जो हैं - अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, इन चारों का मूल स्रोत अज्ञान है, अविद्या है। भगवान् कहते हैं कि जब तलक उस अविद्या का नाश नहीं होगा तब तलक न तो तुम्हारे राग का नाश हो सकता है, न द्वेष का नाश हो सकता है, न अभिनिवेश का नाश हो सकता है, न इनके आश्रयभूत अहं का नाश हो सकताा है। अविद्या के

नाश से ही इनका नाश होगा और अविद्या का नाश कैसे होता है ?

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।

(यो० सू० 2/26)

अविद्या के नाश के लिए केवल विवेक का प्रकाश चाहिए, केवल ज्ञान का प्रकाश चाहिए। ज्ञान के प्रकाश में ही अविद्या का नाश होता है। अविद्या के नाश से ही अहं का नाश हेता है। अहं के नाश से ही राग, द्वेष तथा भय का नाश होता है। इसलिए भगवान् ने कहा पहले धर्म का अनुष्ठान करने से राग का नाश हो जाता है। धर्म का अनुष्ठान करने से राग का नाश कैसे हो जाता है ? कहा, ज्ञान के प्रकाश में। धर्म का अनुष्ठान करने से चित्त शुद्ध होता है, शुद्ध चित्त में ज्ञान का प्रकाश होता है, ज्ञान के प्रकाश में राग का नाश हो जाता है और राग के नाश के पश्चात् ऐश्वर्य का उदय होता है। बड़ा ही सुन्दर क्रम है और ऐश्वर्य के उदय से ही जीव में पूर्णता की अनुभूति होती है। इस विषय में मैं आप लोगों को कल बताऊँगा। आज तो आप लोगों की यही बताना है कि गीता किस प्रकार से विराग की प्रतिष्ठा करती है।

राग रहित होने की जो सीख गीता देती है, उसका क्रम समझ लीजिए आप। गीता यह कहती है कि त्याग नहीं राग ही तुम्हारे दु:ख में हेतु है। इस राग का अवसाद, इस राग से विगत होने पर विराग ही इसकी परम औषधि है। तुलसीदास जी ने बताया कि मनुष्य की चार आँखें होती हैं। मनुष्य की चार आँखों में दो तो ये हैं बाहर वाली जिनको चर्मचक्षु कहते हैं। ये बाहर के पदार्थों को देख सकती हैं। उनकी अस्ति को, सत्ता को देख सकती हैं लेकिन उनके यथार्थ स्वरूप को नहीं देख सकती। उनके यथार्थ स्वरूप को देखने वाली अन्तर की आँखें हैं। तुलसीदास जी कहते हैं -

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी।।

(रा० 7/120-7)

उनका नाम है ज्ञान और वैराग्य। यह ज्ञान-वैराग्य अन्तर के चक्षु हैं-

भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥

(रा० 7/120-8)

ज्ञान और वैराग्य रूपी नेत्रों से युक्त होने पर ही मनुष्य समस्त सुखों की खान जो भक्ति है, भगवत् प्रीति है, उसको प्राप्त कर लेता है। मेरे कहने का अभिप्राय कि पूर्ण वैराग्य की अभिव्यक्ति वा प्रतिष्ठा पूर्ण ज्ञान के प्रकाश में हुआ करती है। इसीलिए पतंजलि ने वैराग्य के दो रूप बताए - एक वशीकार संज्ञक वैराग्य जो अपर वैराग्य है और दूसरा पर वैराग्य है। एक साधन वैराग्य है दूसरा सिद्ध वैराग्य है। साधन वैराग्य में क्या होता है? मनुष्य को अपना पुरुषार्थ करना पड़ता है और परम वैराग्य परमात्मा के प्रसाद से प्राप्त होता है। एक दिन मैंने बताया था कि जब तलक तुम अपना प्रयत्न नहीं करोगे, तब तलक तुम परमात्मा के प्रसाद के पात्र नहीं बनोगे इसलिए गीता कहती है कि तुम वैराग्य का आश्रय लो क्योंकि -

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।

(गीता 3/34)

राग और द्वेष के वश में मत होओ। ये दोनों तुम्हारे जीवन के लुटेरे हैं। इनसे सावधान रहो। वैराग्य की बड़ी महिमा है। वैराग्य को भगवान् ने जगह-जगह पर अनासक्ति कहा है। आसक्ति रहित हो जाना। दूसरे अध्याय में जहाँ स्थितप्रज्ञ की व्याख्या की है, वहां पर भी "रागद्वेषवियुक्तैस्तु" आगे भी कहा कि जो मनुष्य अनासक्त है या मेरे में आसक्त हो गया है, वह यथार्थ तत्त्व को जान लेता है। भगवान् शंकराचार्य जी ने तो अपने सन्देश में कहा है -

कस्य सुखं न करोति विरागः।

दुनिया में कौन सा ऐसा सुख है जिसको वैराग्य के द्वारा न प्राप्त किया जाए। तुलसीदास जी ने कहा कि यदि तुम संसार पर विजय प्राप्त

करना चाहते हो तो -

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।

(रा० 7/120 ख)

वही संसार रूपी शत्रु से विजय प्राप्त कर सकते हो इसलिए गीता के शब्दों में पदार्थ का त्याग नहीं, पदार्थ में वैराग्य मनुष्य के लिए सुख का हेतु है। त्याग देने के पश्चात् यदि राग बना रहा तो अपने त्याग के यथार्थ फल का भोक्ता नहीं होंगे। महाभारत में एक बड़ा सुन्दर प्रसंग है।

चन्द्रवंश के चार राजा थे। चारों का आपस में बड़ा प्रेम था, एक दिन महात्मा नारद उनके मध्य में आ गए। उन चारों राजाओं ने प्रश्न किया कि प्रभो ! कृपा करके हमें यह बताइए कि हम चारों में से यदि कोई स्वर्ग को जाए तो सबसे पहले वहाँ से कौन पृथ्वी पर लौटेगा ? उन्होंने एक राजा का नाम बताया कि यह तुममे से पहले पृथ्वी पर लौटेगा। उन्होंने पूछा महाराज, यह क्यों लौटेगा? क्या बात है? कहा एक दिन मैं इसके घर पर गया और यह राजा मुझे रथ में बैठाकर ले जा रहा था। रास्ते में हज़ारों लाल रंग की सुन्दर-सुन्दर दूध देने वाली गऊएँ चर रही थी। मैंने इस राजा से पूछा कि भई यह गऊएँ किसकी हैं ? इसने बड़े गर्व से कहा है - यह गऊएँ मेरी दान दी हुई हैं। कहा, गऊदान तो कर दिया लेकिन गऊदान करके के पश्चात् अभी मेरापन लगा हुआ है। दे देने के पश्चात् भी राग नहीं गया इसलिए यह स्वर्ग से शीघ्र भ्रष्ट होगा। मेरे कहने का अभिप्राय कि त्याग के पश्चात् भी यदि राग बना रहे तो त्याग से कोई फल नहीं मिलता। महाभारत में एक श्लोक है -

त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यमनृतं त्यज।
उभे सत्यमनृतं त्यक्त्वा एनम् त्यजस्य त्यज॥

देवर्षि बृहस्पति अपने पुत्र को समझाते हुए कह रहे हैं कि परमतत्त्व की जिज्ञासा रखने वाले को चाहिए कि वह पहले तो अधर्म का त्याग कर

दे। अधर्म का त्याग करके धर्मानुष्ठान का संकल्प ले फिर धर्म का भी त्याग कर दे और बाद में उसका अहं रह जाएगा जिसके द्वारा उस धर्म-अधर्म का और सत्य-असत्य का त्याग किया है, अब उसका भी त्याग कर दे अर्थात् त्याग के राग का त्याग। यह बड़ा मुश्किल है। त्याग तो हो जाता है, त्याग के राग का नाश नहीं होता इसलिए भगवान् कहते हैं पहले राग का नाश करो। त्याग से तुम्हें लाभ नहीं होने का यदि राग बना रहा तो। राग का नाश होता है विवेक से। इसलिए धर्म, ज्ञान और उसके प्रकाश में ही होता है पूर्ण वैराग्य और पूर्ण विरक्त होने पर जब मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है तभी वह परमानन्द का भाजन बनता है। धर्म, ज्ञान, वैराग्य से युक्त होने पर मनुष्य ऐश्वर्य युक्त होता है, ऐश्वर्यशाली होता है। यह बात मेरी याद रखो। क्यों होता है? क्यों का उत्तर आज नहीं, कल मिलेगा आपको। आज तो समय पूरा हो गया लेकिन इतना अवश्य याद रखो कि जिसे सही माने में ऐश्वर्य कहते हैं, वह ऐश्वर्यशाली व्यक्ति तभी बनता है, जब उसमें धर्म, ज्ञान और वैराग्य की प्रतिष्ठा होती है। आप लोगों ने राम-राज्य की महिमा सुनी है, आप लोगों ने द्वारिका की महिमा सुनी होगी- स्वर्णमयी द्वारिका लेकिन उसमें रहने वाले जो महापुरुष थे, कौन थे? परम विरक्त। उनमें राग की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसे महापुरुष थे। राम राज्य की प्रतिष्ठा क्यों हुई? राग रहित होने के नाते। एक बात और आप समझ लें। भगवान् राम जब वन में गए थे और महाराज दशरथ का शरीरान्त हुआ, चौदह वर्ष बाद जब अयोध्या में लौट करके आए तो चौदह वर्ष तक राम की चरण पादुका को माध्यम बनाकर अयोध्या की व्यवस्था किसने की थी ? महात्मा भरत ने। तुलसीदास जी लिखते हैं -

अवधराजु सुर राजु सिहाई। दशरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

(रा० 2/324-3)

कहा, जिस राज्य की विभूति को, वैभव को देखकर के देवराज इन्द्र भी सिहाते हैं, जिस महाराज दशरथ के धन को देख करके धनपति देवताओं के देवता कुबेर भी लज्जित होते हैं, उस राज्य में भरत राग रहित हो करके निवास करते हैं। जैसे चम्पा के बगीचे में भंवरा बिना उसका रसपान किए वहाँ पर रहता है, इसी रूप में भरत राग रहित होकर अयोध्या में निवास करते हैं। परिणाम क्या हुआ कि भगवान् राम जब अयोध्या लौट कर आते हैं तो भरत उनसे कहते हैं कि प्रभो ! आप अपने सारे कोष और वैभव को संभालिए और देखिए आप के जाने पश्चात् अयोध्या का कोष दस गुणा अधिक वृद्धि को प्राप्त हो गया है, प्रजा इतनी प्रसन्न है और वह प्रार्थना करती है कि यदि राम हमारे राजा बनें तो -

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥

(रा- 2/273-4)

हमारे युवराज भरत हों, ऐसी उनकी चाह है। ऐसा नहीं कि कोई राम का पुत्र हो और उसे राम युवराज बना लें। मैं आप लोगों को बता रहा था कि अयोध्या के वैभव में महात्मा भरत ने दस गुणा वृद्धि कर दी थी चौदह वर्ष के अन्दर। क्यों ? इसलिए कि वह विरक्त थे। वह राग रहित थे। जहाँ राग होता है, वहाँ ऐवर्श्य नहीं होता। ऐश्वर्य तो वैराग्य का ही परम फल है। इसकी व्याख्या आप लोगों को कल समझाई जाएगी।

हरि ॐ तत्सत्।

गीतोक्त-ऐश्वर्य

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना! आज हमारे इस सायंकाल के कार्यक्रम का पांचवां और आखिरी दिन है। चार दिनों में आप लोगों को गीता के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में कुछ बातें समझाई गई। सर्वप्रथम गीता की अपूर्वता और फिर गीता का प्रतिपाद्य विषय विशुद्ध बुद्धि या योग बुद्धि के प्रकाश में जो प्राप्तव्य है, उनका विशेष रूप से विवेचन किया गया-धर्म, ज्ञान और वैराग्य। गोस्वामी जी ने रामायण में -

धर्म तें बिरति जोग ते ग्याना।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥

(रा० 3/16-1)

ऐसा इस क्रम में बताया। धर्म का अनुष्ठान करने से मनुष्य में राग का पूर्णरूपेण अभाव हो जाता है और वह वैराग्य युक्त हो जाता है। वैराग्य के फलस्वरूप उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है क्योंकि वैराग्य की सिद्धि से योग सिद्ध होता है, चित्त की वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं और चित्त की वृत्तियाँ जब शान्त हो जाती हैं तो उनमें ज्ञान का प्रकाश होता है। ज्ञान के प्रकाश के परिणाम

स्वरूप उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

गीता में भगवान् ने धर्म के प्रकाश में चित्तशुद्धि और जो वशीकरण संज्ञक वैराग्य है उसकी प्राप्ति, ज्ञान के प्रकाश में पूर्ण रूप से गुणों के प्रति वितृष्णा, गुण वितृष्णा जिसे कहा गया है और आत्मरति की उपलब्धि होती है, ऐसा बताया है। आसक्ति से रहित होने के लिए भगवान् ने दोनों विधियाँ समझाई- एक विधि सांख्य की और दूसरी योग की। इस विषय में आपको विस्तार के साथ बताया गया। ज्ञान और वैराग्य की सिद्धि होने पर चौथा जो प्राप्तव्य है मनुष्य का, वह है ऐश्वर्य। ऐश्वर्य किसे कहते हैं-यह प्रश्न है? पहले उसे समझ लो। ऐश्वर्य शब्द का अर्थ होता है, ईश्वरीय वैभव। यह ऐश्वर्य शब्द ईश्वर से बनता है। ईश्वरीय वैभव को ऐश्वर्य कहते हैं। जैसे गीता के ग्यारहवें अध्याय में भगवान् ने बताया -

पश्य मे योगमैश्वर्यम्।

(गीता 11/8)

हे अर्जुन! अब तुम मेरे योग के ऐश्वर्य को देखो। ईश्वरत्व का जो भाव है, उस भाव के प्रकाश में जो ईश्वरीय वैभव उपलब्ध होता है, उसे ऐश्वर्य कहते हैं और उसी को हमारे यहाँ सिद्धि भी कहा गया है। ऐश्वर्य में अष्ट सिद्धियों की प्रतिष्ठा है। अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, इशित् और वशित् ये आठ सिद्धियां हैं, इन्हीं को ऐश्वर्य कहा जाता है क्योंकि यह ईश्वर का वैभव है इसलिए इसका नाम है ऐश्वर्य और इन सिद्धियों की प्राप्ति धर्म, ज्ञान और वैराग्य की सिद्धि के पश्चात् होती है। इसमें सब प्रकार के ऐश्वर्य आ जाते हैं। आप लोगों को कई बार मैंने बताया है कि गीता का अन्तिम प्राप्तव्य ईश्वरत्व की प्राप्ति में है। भगवान् ने स्वयं इसका निर्देश करते हुए बताया-

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।

(गीता 14/2)

इस का अर्थ होता है मेरे समान धर्म को प्राप्त कर लेना। उसी ज्ञान की महिमा दूसरे श्लोक में बताई -

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।

(गीता 4/10)

ज्ञान रूपी तप के द्वारा पवित्र हो करके बहुत से साधक मेरे भाव को माने ईश्वरीय भाव को प्राप्त हो गए हैं। ईश्वरीय भाव को ही ऐश्वर्य कहते हैं। साँख्य शास्त्र कहता है कि विशुद्ध बुद्धि के प्रकाश में धर्म, ज्ञान और वैराग्य की सिद्धि के साथ ही ईश्वरीय भाव की उपलब्धि हो जाती है और ऐश्वर्य का उदय होता है वा ऐश्वर्य का प्रकाश होता है। वेदान्त में इस विषय में प्रश्न उठा है कि जब साधक ईश्वरीय भाव को प्राप्त कर लेता है तो क्या उसमें ईश्वर के सारे के सारे धर्म आ जाते हैं ? ईश्वर का धर्म क्या है ? कहा -

उत्पत्तिप्रलयश्चैव भूतानां गतिमगतिम्।

सृष्टि का निर्माण करना और सृष्टि को समेट लेना। प्राणियों को गति वा मोक्ष देना या उनको कर्मानुसार बन्धन में डाल देना।

वेत्थ विद्यामविद्याम् च स वाचो भगवानिति।

विद्या और अविद्या का पूर्ण बोध प्राप्त करना। क्या जीवों में भी यह सारी शक्ति आ जाती है? व्यासदेव जी अपने मीमांसा में समाधान करते हैं कि जीव ईश्वरत्व को प्राप्त तो कर लेता है लेकिन उसमें ईश्वर के ये गुण नहीं आते। कौन से? उत्पत्ति और प्रलय। वह उत्पत्ति नहीं कर सकता प्रलय नहीं कर सकता और ये तो ईश्वर में ही प्रतिष्ठित होते हैं। भगवान् ने कहा कि जो मेरे इस ज्ञान का आश्रय लेता है, वह मेरे धर्म को प्राप्त कर लेता है। मेरा धर्म क्या है? वह अजर, अमर और अविनाशी हो जाता है।

सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥

(गीता 14/2)

वह पुनः संसार के प्रवाह में नहीं जाता। ईश्वर की दिव्य शक्ति, ईश्वर का पूर्ण वैभव अर्थात् उसमें पूर्णता की अनुभूति होने लगती है। वह पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है। पूर्णत्व को प्राप्त किया हुआ प्राणी समस्त ऐश्वर्यों का अधिपति हो जाता है और संकल्प सिद्ध होने से प्रकृति का सम्पूर्ण वैभव उसे प्राप्त हो जाता है।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

(गीता 18/46)

वह परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है और परम सिद्धि को प्राप्त कर लेने के पश्चात् अब उसे कुछ भी पाने की चाह नहीं रहती। जैसे परमात्मा आत्माराम है, ऐसे वह भी आत्माराम हो जाता है। जैसे सारा वैभव परमात्मा के संकल्प मात्र से प्रस्तुत हो जाता है, ऐसे ही उस ज्ञानी के संकल्प मात्र से समस्त वैभव उपस्थित हो जाता है क्योंकि वहाँ अभाव नहीं होता। संत कबीर ने कहा -

चाह चमारी चूहरी तू नीचन की नीच।
हौं तो पूरा ब्रह्म था यदि तू न होती बीच॥

फिर एक दोहे में उन्होंने कहा -

चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बेपरवाह।
जा को कछु न चाहिए सो शाहन को शाह॥

जीवन में जो जीवत्व की अवस्था में अभाव की अनुभूति होती है, वह ईश्वरत्व की अवस्था में सदा के लिए समाप्त हो जाती है। किसी भी प्रकार के अभाव की अनुभूति नहीं होती। अपने आप में वह तृप्त होता है, पूर्ण होता है, आत्माराम होता है।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

(गीता 3/17)

उसे दुनिया में कुछ पाने वाली वस्तु की चाह नहीं होती।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥

(गीता 3/18)

दुनिया में अब उसे किसी से कुछ नहीं चाहिए। उसको कहते हैं ऐश्वर्यवान्। ऐश्वर्यवान् माने ? उस में ईश्वरत्व भाव की प्रतिष्ठा हो गई है। यह गीता का अन्तिम प्रासव्य है। इसके लिए भगवान् ने कई शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे ब्राह्मी भाव। पाँचवें अध्याय में -

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

(गीता 5/19)

अब उसका चित्त दोषरहित हो गया है और दोषरहित होने से समत्व को प्रास कर लिया है और समत्व ही ब्रह्म का स्वरूप है इसलिए उस ब्रह्म में वह प्रतिष्ठित हो जाता है। अठारहवें अध्याय में इसको कहा- ब्राह्मी भाव को प्रास हो जाना। ब्रह्मभूत हो गया। ब्रह्मभूत का लक्षण क्या है? कहा -

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।

(गीता 18 /54)

अब वह सदैव प्रसन्न रहता है क्योंकि ब्रह्मभूत की चाह मिट गई और कल्पना मिट गई-

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।

(ईशा० 7)

अब इन दोनों से मुक्त हो गया तो -

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

(गीता 18/54)

सम्पूर्ण प्राणियों में उसका समत्व भाव प्रतिष्ठित हो गया। अब वह

परमात्मा से अभिन्नता की अनुभूति करने लगा है -

भगवान् कहते हैं वह मेरी परा भक्ति को प्राप्त कर लिया। परा भक्ति का अभिप्राय होता है भगवान् से अभिन्नता की अनुभूति। इसलिए -

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(गीता 18/55)

यह ऐश्वर्य को प्राप्त हुए व्यक्ति का लक्षण है। ऐश्वर्य माने ईश्वरत्व की भावना से युक्त हो जाना। अपने और ईश्वर के बीच में जो आवरण है, उससे मुक्त हो कर एकत्व की अनुभूति कर लेना। इसका नाम है ऐश्वर्य। दुनिया के वैभव उसके पीछे-पीछे चलते हैं। उसके पीछे-पीछे क्यों चलते हैं? कहा, इसलिए कि वह विरक्त है। आप तो यह बात जानते हो कि कोई भी अपना विनाश नहीं चाहता और भोग में भोग्य पदार्थ का विनाश निहित है। जो विरक्त हो गया है, भोग की चाह से मुक्त हो गया है, अपनी रक्षा के लिए वे पदार्थ उसका आश्रय लेते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि यह तो उसका भोग करेगा नहीं इसलिए सारे वैभव उसके पास पहुँच जाते हैं और वह उनका भोग नहीं करता। भोग न करने के नाते वह उन सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का स्वामी हो जाता है। उसको कहते हैं ऐश्वर्यवान्। योगी भोगी नहीं होता इसलिए उसके पास सम्पूर्ण ऐश्वर्य उपस्थित रहते हैं। भोगी से सम्पूर्ण ऐश्वर्य अपनी रक्षा चाहते हैं इसलिए उससे दूर रहते हैं क्योंकि भोग में नाश निहित है। यह इसके पीछे सिद्धान्त है। योगी जो विशुद्ध बुद्धि के धनी हैं, उनमें स्वत: धर्म की प्रतिष्ठा हो जाती है और उस स्थिति को धर्ममेघ सामधि कहते हैं। जैसे मेघ जल की वर्षा करता है, ऐसे उस योगी से धर्म की वृष्टि होती है। जैसे रामायण में भरत जी के लिए महर्षि वसिष्ठ कहते हैं-

समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई।।

(रा० 2/323-4)

हे भरत! जो तुम समझोगे, जो तुम कहोगे, जो तुम करोगे, वह दुनिया में धर्म का सार होगा।

तुम कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।

(रा० 2/208)

वह तुम्हारे लिए कलंक होगा परन्तु हम सब के लिए शिक्षा है।

देखि दसा मुनिराज लजाहि॥

(रा० 2/326-2)

तुलसीदास जी लिखते हैं ऐसी स्थिति है भरत जी की। तो भरत जिस अवस्था में है, उस अवस्था में उनका कहना, उनका करना, उनका समझना अर्थात् ज्ञान, भाव और क्रिया इन तीनों से धर्म की वृष्टि है, क्योंकि वह धर्ममेघ समाधि की अवस्था में है और जहाँ धर्म है वहाँ स्वभावत: ज्ञान का प्रकाश होता है और जहाँ ज्ञान है वहाँ स्वभावत: विराग होगा। ज्ञान के प्रकाश में ही विराग की वृद्धि होती है। भगवान् ने कहा -

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

(गीता 2/59)

जहाँ ज्ञान के प्रकाश में परम तत्त्व का बोध हुआ, वहाँ अपने आप संसार से विरति हो जाती है, संसार से रति समाप्त हो जाती है। जहाँ संसार से विरति हो गई वहाँ पर संसार के सारे वैभव आकर के उसके सामने उपस्थित हो जाते हैं।

हमारे यहाँ शास्त्रकारों ने जीवों के कई भेद बताए हैं। उसमें उनके लक्षण उनके व्यवहार से जाने जाते हैं। शास्त्रकार ने कहा कि जो समाज से जितना लेता है, उतना ही दे देता है यह स्थिति है मनुष्य की। मनुष्य समाज से जितना लेता है उसके बदले में वह उसे उतना ही दे देता है। मनुष्य से ऊपर जो मनुष्यों में श्रेष्ठ कहे जाते हैं उनको भगवान् ने गीता में महात्मा कहा है। कहा महात्मा किसे कहते हैं? बताया, जो समाज से बहुत कम लेता है

लेकिन बहुत ज्यादा देता है। लेता बहुत कम है और देता अधिक है। महात्मा से ऊपर जिसकी स्थिति है उसको परमात्मा कहते हैं, विश्वात्मा कहते हैं। वह जो विश्वात्मा है, वह समाज से कुछ नहीं लेता, वह समाज को देता ही जाता है। जो समाज से लेता नहीं देता ही रहता है, वह तो विश्वात्मा, परमात्मा, ईश्वरत्व को प्राप्त किया हुआ है। जो समाज से लेता बहुत कम है देता अधिक है, वह महात्मा है और जो समाज से जितना लेता है उतना ही दे देता है वह मनुष्य है। इस से नीचे तो राक्षस है वह समाज से लेता ही लेता है, देता कुछ नहीं। तुलसीदास जी उसके विषय में कहते हैं -

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥

(रा० 7/37-दोहा)

जिसने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है -

न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।

(गीता 3/18)

भगवान् ने बड़े जोरदार शब्दों में कहा है कि अब उस व्यक्ति का समाज के किसी भी व्यक्ति और वस्तु से कोई प्रयोजन नहीं रहा। जो पाना था, सो पा लिया। जो करना था, वह कर लिया। जो जानना था वह जान लिया। उसकी यह स्थिति हो जाती है। कर्तुं इच्छा, प्राप्तुं इच्छा, ज्ञातुं इच्छा समाप्त हो गई इसलिए वहाँ पर न कर्तुं इच्छा है, न प्राप्तुं इच्छा है, न ज्ञातुं इच्छा है और न भोक्तुं इच्छा है। चारों प्रकार की इच्छाएँ उसकी समाप्त हो गई हैं इसलिए वह ईश्वरत्व को प्राप्त है और यह जीवन की पूर्णता का प्रतीक है, जीवन की पूर्णता का लक्षण है। वह ईश्वरत्व को प्राप्त किया है वा नहीं, इसको जानने के लिए गीता उसका लक्षण बताती है। तीसरे अध्याय का श्लोक है, याद कर लेना जिसमें भगवान् ने बताया है कि पूर्ण जीवन का वा ईश्वरत्व को प्राप्त हुए का लक्षण है -

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

(गीता 7/19)

सर्वत्र सर्वरूप में एक वासुदेव की ही सत्ता को देखता है। उसने स्वयं को उसमें प्रतिष्ठित कर दिया और इसी को यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में ऋषि कहता है कि वह साधक विद्या और अविद्या, संभूति और असंभूति दोनों से परे पहुँच जाता है यानी शरीर की उच्चतम अवस्था में आगे बढ़ता हुआ जब जीवत्व भाव के अन्तिम छोर पर पहुँच जाता है, जहाँ से जीवत्व का उदय हो रहा है तो प्रभु से प्रार्थना करता है। जीवत्व का उदय कहाँ से होता है ? ब्रह्मचक्र से। चेतना का जो ब्रह्मचक्र में आविर्भाव होता है, उस स्फुरणा का नाम जीवन है। जीवन पुरुष तत्त्व का नाम है और जीवन का प्रारम्भ वहीं से होता है। ब्रह्मचक्र को चित्त भी कहते हैं। चित्तगत चेतना में अहं का जो स्फुरण हो रहा है, वह उपासक अपने आप को नीचे के चक्रों से ऊपर उठाता हुआ आज्ञाचक्र में प्रतिष्ठित हो गया है। आज्ञाचक्र में प्रतिष्ठित होकर के अब उसे एक झीना सा आवरण दिखाई दे रहा है और वह आवरण कैसा है ? प्रकाशमय! यथार्थ तत्त्व का दर्शन नहीं हो रहा है अभी। प्रकाश ऐसा दिखाई दे रहा है लेकिन वह ऋषि कहता है कि वह प्रकाश आवरण है। वह सूक्ष्मतम प्रकाश आत्मा का स्वरूप नहीं है, वह तो आत्मा पर आवरण है लेकिन यह उसके बस की बात नहीं, उसके बूते की बात नहीं कि वह उस आवरण को हटा सके इसलिए यजुर्वेद का ऋषि प्रार्थना करता है। उस आवरण के पार जो अनन्त चिद्घन, अनन्त चेतन, सच्चिदानन्द ब्रह्म जिसे ईश्वर वा परमेश्वर कहते हैं जो चिदाकाश के उस पार है और इस पार उसका स्फुरित होने वाला अहं, उसका चिदांश है। अब चिदांश अपने कारण को देखने के लिए बीच में जो आवरण है, उस को दूर करने की प्रार्थना करता है –

हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

सत्य का मुख अर्थात् यथार्थ स्वरूप हिरण्यमय पात्र से आवृत हो गया है। अपहित माने ढक गया है।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।

(ईशा०15)

हे पूषणकर्ता, हे जीवनाधार प्रभु! मुझे सत्यधर्मा के देखने के लिए इसे हटा दो जिससे मैं सत्य का मुख देख लूं और उसकी प्रार्थना उस अवस्था में सुनी जाती है। यह प्रार्थी किस अवस्था में पहुँचा हुआ है, जानते हो ? संप्रज्ञात समाधि की अवस्था में क्योंकि संप्रज्ञात समाधि की अवस्था में पहुँचे हुए योगी को यह आवरण दिखाई देता है, सब को नहीं दिखाई देता। संप्रज्ञात समाधि की अवस्था में पहुँचा हुआ योगी भेद का आवरण देखता है क्योंकि वहाँ भेद है अभी। जीवत्व उसका जीवित है अभी। अभी लिमिटेशन से मुक्त नहीं हुआ वह लेकिन वह लिमिटेशन उसका प्रकाशमय है इसलिए वह प्रार्थना करता है। उसकी प्रार्थना सुनी जाती है।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह।

(ईशा०16)

हे पूषन, हे एकरसे, हे सूर्य, हे प्राजापत्य, आप इस रश्मिस्मूह को एकत्रित कर लें, बटोर लें, समेट लें।जब वह समेट लेता है तब वह देखता है –

योऽसावसौः पुरुषः सोऽहमस्मि।

(ईश०16)

जो वह पुरुष है वही मैं हूँ –

यो असौ आदित्यः पुरुषः सोऽहमस्मि।

जो आदित्य पुरुष है, वही मैं हूँ। वहाँ भेद समाप्त हो गया है और उस अवस्था में उसकी ईश्वरत्व में स्थिति हो गई। उसी अवस्था को गीता में ब्राह्मी स्थिति कहा गया। जो इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है, वह पुनः मोह

में नहीं पड़ता -

> एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
> स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(गीता 2/72)

यह ब्राह्मी स्थिति है, इस ब्राह्मी स्थिति को पाने वाला व्यक्ति पुनः मोह में नहीं पड़ता और यदि यह स्थिति जीवन भर नहीं मिली, अन्तकाल में भी मिल जाए तब भी वह ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त कर लेता है, तब भी ब्रह्मलीन हो जाता है। इसी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त किए हुए ऋषि के लिए कहा गया है कि वह अपने जीवन को "सर्वभूतहितेरताः" सम्पूर्ण प्राणियों के कल्याण में लगाए रखता है जब तक उसका प्रारब्ध शेष है वा शरीर रहता है। उस स्थिति को प्राप्त करने के बाद वह क्या करता है ? उस का अपना काम तो पूरा हो गया। अब उसे अपने लिए तो कुछ करना नहीं। जब अपने लिए उसे कुछ नहीं करना है, तब वह क्या करेगा ? उसे भोग की चाह नहीं रही, कोई वासना नहीं रही, कोई कामना नहीं रही, कोई अभाव नहीं रहा। अब उसको न तो कोई इच्छा रही, न प्राप्तुं इच्छा रही, न ज्ञातुं इच्छा रही। सभी प्रकार की इच्छाएं उसकी समाप्त हो गई हैं। वह क्या करेगा आखिर? क्या करेगा भाई ? गीता कहती है कि उसके लिए दो ही विकल्प हैं। एक तो यह कि वह जड़वत पड़ा रहे, जब तक प्रारब्ध समाप्त न हो जाए।

ऐसी स्थिति में रहने वाले एक सन्त का दर्शन हुआ। बहुत वर्ष पहले की बात है। उन दिनों मैं पंजाब के एक स्थान भठिण्डा में था और स्वामी रामकृष्ण परमहंस के एक शिष्य थे सत्यानन्द। सत्यानन्द जी के शिष्य थे गिरीश्वरानन्द। जब सत्यानन्द जी वहाँ के अध्यक्ष पद को प्राप्त किए तो गिरीश्वरानन्द जी उसमें कार्यकर्ता थे- मंत्री थे वहां। अच्छे विद्वान् और अच्छे कार्य करने वालों में थे लेकिन किसी बात को लेकर के मिशन

के साथ उनका मतभेद हो गया और पांच-सात व्यक्ति जो थे महात्मा उन्होंने मिशन का त्याग कर दिया। उसमें गिरीश्वरानन्द जी ने भी त्याग किया और वह आ कर के पंजाब में रहने लगे। अभी, कुछ वर्ष पहले उन्होंने गंगानगर में शरीर छोड़ा, एक सौ दस वर्ष की आयु में। उन दिनों में मैं उनके साथ था। हम साथ-साथ रहते थे तथा भिक्षा भी साथ-साथ ही करते थे, "नारायण हरि" करके रोटी मांगते थे और साथ रहते थे, सत्संग करते थे। मैं यंग था, वह काफी वृद्ध थे। एक दिन उन्होंने मेरे से कहा कि बावरे, एक सन्त रहते हैं, जिस अवस्था की तुम चर्चा किया करते हो, उस अवस्था में वह हैं, अपन चलें, उनके दर्शन करें। तुरीयावस्था में रहने वाले सन्त हैं, उत्सुकता हुई उन्हें देखें। वहाँ से भठिण्डा से जो गाड़ी अबोहर की तरफ जाती है, आगे जाकर के गीदड़बाहा एक स्टेशन आता है, उससे पूर्व सीबिया एक गांव है। छोटा सा स्टेशन है। हम गाड़ी में बैठ कर वहाँ गए। स्टेशन से उतर कर कुछ मील दूर पर सीबिया गांव था। सीबिया गांव में चले गए। उनको साठ वर्ष हो गए थे वहां रहते हुए। साठ वर्ष से एक आसन पर, आसन क्या उकडू-मुकडू आसन। उकडू-मुकडू आसन से उनको साठ वर्ष हो गए थे ऐसे बैठे हुए। उस समय उस सन्त की आयु नब्बे वर्ष थी, जब हम लोग वहाँ गए। तीस वर्ष की आयु में उनको सम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त हो गई थी गुरु कृपा से। उसके बाद में उनकी यह समाधि नीचे उतरी ही नहीं। उन को यह नहीं पता होता था, मल कब निकल गया, मूत्र कब निकल गया शरीर से। ऐसे ही बैठे रहते थे। कभी आँख बंद होती थी, कभी उनकी रुचि होती थी तो आँख खोलते थे। आँख खोलते ज़रा सा मुस्कराते। जहाँ पर वह बैठे थे, वहाँ की स्थिति सुनिए। झोंपड़ी थी, पक्का मकान नहीं, यह जो सरकंडा होता है उसकी ऐसे ऊपर छत डाली हुई और थोड़ी सी दीवार ऊँची बनाई हुई, तीन-चार साल बाद उसे बदल देते थे लोग। उस झोंपड़ी के नीचे मटके पड़े थे, बड़े-2, कोई छोटा मटका, कोई बड़ा मटका। करीब चालीस-

पचास मटके ऐसे रखे हुए थे उनके चारों तरफ। मैं गया, उनके दर्शन किए उनको प्रणाम किया, वह वैसे थे उसी मुद्रा में। मैंने स्वामी जी से पूछा कि महाराज इनके अगल-बगल में इतने मटके किस लिए पड़े हैं ? उन्होंने कहा, देखते रहो। थोड़ी देर बाद एक मटके से एक फणिहर साँप ने मुँह निकाला, कोबरा। स्वामी जी ने कहा, सब में साँप पड़े हुए हैं, कहीं बिच्छू हैं। वह कोबरा निकल कर फन उठाए मेरे सामने से बाहर आया। बाहर आकर के वह पीठ की तरफ से उनके ऊपर चढ़ आया। ऊपर चढ़ कर के गले से लपेट कर के फन उठा करके बैठ गया, जैसे शंकर जी के देखते हो। जब वह दृश्य बना तो हमने तो प्रणाम किया, साक्षात शंकर जी विराजमान हैं, कोबरा बैठा हुआ है। थोड़ी देर बाद फिर अपने आप, अपने फन को समेटा और गले में जो घेरा डाला हुआ था उसको हटाकर उतर कर उस मटके में बैठ गया। बड़े आश्चर्य की बात। जहाँ तक मेरा अनुमान है, करीब दो ढाई घंटे हम उनके पास बैठे और वह महापुरुष उसी मुद्रा में पड़े रहे। गांव वालों ने बताया कि अपन कुछ खिला दें तो खा लेते हैं और मल-मूत्र निकल गया तो गांव वाले उनको उठा कर बगल कर देते हैं और सफाई कर देते हैं। उनको उससे कोई मतलब नहीं। उन्होंने अचानक आँख खोली। मैं बैठा हुआ था और स्वामी जी बैठे हुए थे। देखा तो मुस्कराए। वहाँ जो भी जाता है उनके पास तो तमाम चीज़ फल वहाँ रख देता था। उन्होंने बगल में हाथ मारा तो वहाँ केला पड़ा हुआ था, केले को उन्होंने उठा लिया और एक-एक करके ऐसे गिना, पाँच जब हो गया तो एक केला तोड़ कर उन्होंने मेरी तरफ बड़ा दिया। मैंने प्रणाम करके प्रसाद ले लिया। प्रसाद ले लिया तो मुस्कराए। आँख बद कर लिए। थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर तीन केले गिने और तोड़ कर महात्मा जी को जो मेरे साथ थे, उनको प्रसाद दिया। उन्होंने प्रसाद लिया। प्रसाद लेकर के उन्होंने कहा कि यह इनका निर्देश है कि अब तुम लोग जाओ। काम हो गया, अपन को प्रसाद मिल

गया। उस महापुरुष के दर्शन किए जो समाधि अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात उसी अवस्था में रह गए। कभी-2 व्युत्थान की अवस्था में आते तो ज़रा सी आँख खोल देते। यह स्थिति है। जिसको अपने शरीर का ही होश नहीं है, समाज में वह क्या करेगा? उसकी वहाँ उपस्थिति ही उस वातावरण को वाईबरेट करती रहती है क्योंकि उनके शरीर से जो लहरें निकलती हैं वे तो दिव्यता से सम्बन्धित हैं। वह तो दिव्यता में ही प्रतिष्ठित हैं हमेशा। दिव्य लहरें बहुत बड़ा काम करती हैं, इस प्रकार के महात्माओं के जरिए लेकिन जो उस समाधि अवस्था में नहीं रहते। समाधि प्राप्त कर ली, पूर्णता को प्राप्त कर लिए और पुनः व्युत्थान की अवस्था में आने पर भी उनमें अब चाह नहीं है। अब वह क्या काम करते हैं ? शरीर कब तक ऐसे रखेंगे। उनके लिए भगवान् ने गीता में बताया कि "सर्वभूतहितेरता:" अब वे सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत रहते हैं। उनकी सम्पूर्ण क्रिया सम्पूर्ण प्राणियों के हित में हुआ करती है और एक क्षण भी वे क्रिया-शून्य नहीं होते। मिले हुए साधन का सदुपयोग कर रहे हैं। पूछा गया कि वह अवस्था श्रेष्ठ है कि यह अवस्था श्रेष्ठ है? भगवान् ने कहा कि नहीं, इसमें कोई श्रेष्ठ और कम श्रेष्ठ नहीं है। दोनों अपने में पूर्ण हैं। एक की व्याख्या भगवान् ने तीसरे अध्याय में की और दूसरे की व्याख्या भगवान् ने पाँचवें अध्याय में की। यहाँ पर भगवान् ने बताया कि "सर्वभूतहितेरता:"-सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत रहने वाले ऋषि हैं। तीसरे अध्याय वाले की स्थिति बताई कि अब उसे किसी से कुछ नहीं चाहिए, वह तो आत्मरत है, आत्मतृप्त है, आत्मतुष्ट है इसलिए वह कुछ नहीं करता तो कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि उसके लिए करणीय अब कुछ नहीं रहा। वह ईश्वरत्व में, अपने आत्मवैभव में प्रतिष्ठित है और दूसरा जो ईश्वरत्व में प्रतिष्ठित है, वह व्युत्थान की अवस्था में आकर लोककल्याण का काम किया करता है। आन्तरिक अवस्था दोनों की एक है , दोनों पहुँचे हुए हैं, दोनों में कोई कमी नहीं है, लेकिन एक ऐसी स्थिति

में है, जहाँ वह काम करता है। उसमें कारण क्या होता है? उसमें कारण होता है, रास्ता। किस प्रकार की साधना से कौन साधक उस स्थिति में पहुँचा है। यह साधना के ऊपर निर्भर है। एक साधना की प्रक्रिया में उस स्थिति में जाने के पश्चात् वह पुनः किसी काम का नहीं रहता और दूसरी साधना की प्रक्रिया में उस स्थिति में पहुँच कर वह लोक कल्याण के लिए वरदान सिद्ध होता है। दोनों की साधना पद्धतियों में भेद है। एक सांख्य की साधना पद्धति है, दूसरी योग की है इसलिए भगवान् ने महता गाई है योग की। वह कहते हैं सांख्य की पद्धति वाला भी उसी तत्त्व को प्राप्त कर लेता है उसमें कमी नहीं होती कोई। बारहवें अध्याय के प्रारम्भ में बताया कि जो अक्षर में लीन है वह भी उसी गति को प्राप्त कर लेता है लेकिन जो योग की साधना से गया है, योग बुद्धि का आश्रय लेकर के उस अवस्था में पहुँचा है, वह पूर्णत्व को प्राप्त करके भी सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत रहता है इसलिए भगवान् ने कहा -

तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।

(गीता 5/2)

मेरे विचार से कर्मसन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है। क्यों श्रेष्ठ है ? कहा कि कर्मसन्यासी अपनी आत्म स्थिति में प्रतिष्ठित हो करके आनन्द का अनुभव करता है, उसके द्वारा जो वाईबरेशन होता है, उसी से समाज का कल्याण होता है लेकिन जो कर्मयोगी है, योग मार्ग का जो पथिक है, वह अपनी वाणी द्वारा, अपनी क्रिया द्वारा अपनी वाईबरेशन द्वारा, भाव द्वारा, विचार द्वारा, तीनों प्रकार से लोकहित में लगा हुआ है इसलिए भगवान् कहते हैं कि मेरे विचार में वही श्रेष्ठ है।

मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि गीता का जो अन्तिम प्राप्तव्य है, वह ईश्वरत्व की प्राप्ति है और ईश्वरत्व भाव को प्राप्त करने के पश्चात् जिस ऐश्वर्य की प्रतिष्ठा होती है, वह ऐश्वर्य उस योगी के लिए तो

तृप्तिकारक है ही लेकिन लोक कल्याण में भी उसका बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। उसको अपने लिए कुछ नहीं चाहिए, अब उसके पास जो कुछ है, सब प्राणियों के कल्याण के लिए है और यहाँ केवल मानव हित की बात नहीं है। केवल मानव हित की बात करने वाला व्यक्ति बुद्धिस्थ है, आत्मस्थ नहीं है। इसका भी बड़ा सुन्दर क्रम है, यह समझ लो आप लोग। जो व्यक्ति शरीरस्थ है, वह केवल अपने शरीर की चिन्ता करता है, दुनिया मरे चाहे जिए। जो शरीरस्थ से ऊपर हो गया, इन्द्रियस्थ हो गया। शरीरस्थ के लिए तुलसीदास जी ने बड़े कठोर शब्दों का प्रयोग किया है -

तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥

(रा० 6/31-2)

वह कहते हैं कि जो शरीरस्थ है, वह तो जीते जी मुर्दे के समान है। जो शरीरस्थ नहीं है, इन्द्रियस्थ हैं। इन्द्रियस्थ, व्यक्ति जो है वह अपने लिए और अपने परिवार के लिए जीता है- इन्द्रियों का जहाँ तक सम्बन्ध है। परिवार किससे बना है ? इन्द्रियों से बना है। तो अपने -2 परिवार के लिए वह प्रयत्न करता रहता है, पेट और परिवार के अतिरिक्त किसी को नहीं जानता। जो मनस्थ है, उसकी सीमा थोड़ा और आगे बढ़ जाती है। मनस्थ होने के नाते अपने वर्ग के लिए वह प्रयत्न करता रहता है। वह शरीरस्थ से अच्छा है, वह परिवारसक्त से भी अच्छा है क्योंकि अपने वर्ग के लिए तो कोशिश कर रहा है लेकिन जो उससे ऊपर चला गया है, जैसे अहं में स्थित है, मन से ऊपर है। मन से ऊपर दो ही स्थितियाँ हैं बुद्धि और आत्मा। अहं तो सबके साथ जुड़ा रहता है लेकिन मन से परे बुद्धि का स्थान है। अब जो बुद्धि में स्थित हो गया है, वह व्यक्ति किसी वर्ग विशेष के लिए काम नहीं करता, वह मानव मात्र के लिए काम करता है क्योंकि बुद्धि मनुष्यता का आश्रय है। इसलिए बुद्धि में प्रतिष्ठित व्यक्ति मानव मात्र के कल्याण की कल्पना करता है। मन में स्थित व्यक्ति अपने वर्ग की

कल्याण की कल्पना करता है, इन्द्रियों में स्थित व्यक्ति केवल अपने परिवार के कल्याण की कल्पना करता है और शरीर में स्थित व्यक्ति केवल अपने पेट की कल्पना करता है लेकिन गीता जिस अवस्था की बात कर रही है, वह बुद्धिस्थ प्राणी नहीं है, वह तो आत्मस्थ है, बुद्धि से परे है। आत्मस्थ होने के नाते उसके लिए केवल मानव ही मूल्यवान् नहीं है। फिर? उसके लिए तो सारे प्राणी एक से हैं इसलिए भगवान् कहते हैं -

प्राप्नुवन्ति मामैव सर्वभूतहितेरताः।

अब वह सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत है। वह जितना मानव का मूल्य समझता है, उतना ही सब प्राणियों का मूल्य समझता है। तुलसीदास जी कहते हैं -

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

(रा० 1/7 ग)

जड़-चेतन, जितने जीव हैं, छोटे जीव हैं, बड़े जीव हैं, सब मेरे लिए वन्दनीय हैं।

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(रा० 1/8-1)

उनके लिए सभी वन्दनीय हैं, क्योंकि वह आत्मस्थ हैं, बुद्धिस्थ नहीं है। तो गीता का जो अन्तिम प्राप्तव्य है, वह आत्मस्थ स्वरूप है, आत्मरति है। आत्मस्थ व्यक्ति सम्पूर्ण प्राणियों के कल्याण में निरत रहता है, क्योंकि आत्मा तो सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त है, उस आत्मा के वह दर्शन करता है। गीताा में स्पष्ट शब्दों में भगवान् ने कहा है -

सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।

(गीता 5/7)

वह सम्पूर्ण प्राणियों के कल्याण का प्रयत्न करता है लेकिन किसी

से लिपायमान नहीं होता। सम्पूर्ण प्राणियों के कल्याण की साधना में निरत रहते हुए किसी भी कर्म से वह लिपायमान नहीं होता इसीलिए उसके पास सम्पूर्ण ऐश्वर्य उपस्थित होता है। प्रकृति का समग्र वैभव उसके पीछे-2 चलता है। ऐसा महापुरुष जहाँ भी जाएं, प्रकृति के समस्त साधन उसके पीछे-2 चलते हैं, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं, याद रखो। मैं दुनिया के उन देशों में गया हूँ एटलान्टिक महासागर में, वहाँ बहुत छोटे-2 टापू हैं। कई टापू ऐसे हैं जिनकी आबादी केवल डेढ़ हज़ार है। कई टापू ऐसे हैं जिनकी लम्बाई चौड़ाई सारा घेरा 15 किलोमीटर लम्बा और 10 किलोमीटर चौड़ा है। ऐसे अनेक टापूओं में मैं घूमा हूँ जिनकी आबादी 5 हज़ार से कम थी, ऐसे टापू हैं, लेकिन वहाँ भी दो दिन रहकर जब मैं चला हूँ तो लोगों की आँखों में आंसू मैंने देखे। उन दिनों ब्रह्मवादिनी कृष्णकान्ता जी जो मेरी शिष्या हैं, मेरे साथ थी। अमेरिका के जो छोटे-छोटे टापू हैं वहां भी मैं गया। दुनिया के जितने भी देशों में मैं घूमा हूँ, कहीं हमें यह नहीं लगा कि हम विदेशी हैं और ये हमारे अपरिचित हैं। लोगों ने इतना प्यार दिया, मैं कह नहीं सकता। किसके नाते किया? कल्पना कीजिए। केवल उस एक परम सत्य के नाते इसलिए यह जो मैं आपको बता रहा हूँ, यह कल्पना नहीं है। यदि आप उस स्थिति को प्राप्त कर लेंगे तो सारा ऐश्वर्य आपके पीछे-2 चलेगा। यहाँ के लोग तो बहुत जानते हैं मुझे क्योंकि बहुत वर्षों से मैं यहाँ हूँ। अब तक सारी दुनिया में मैं घूमा हूँ लेकिन कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि जब मैं कभी पैसे को हाथ में लेकर कहीं गया हूँ। पैसे को बिना स्पर्श किए मैं सारी दुनिया में घूम आया। सारी व्यवस्था भगवान् ने की, सारा ऐश्वर्य पीछे-2 दौड़ता रहा। यह गीता जो कहती है इसलिए मैं आपको बता रहा हूँ, अपनी महिमा नहीं गा रहा हूँ आपके सामने। गीता जो कहती है, वह सत्य है और इसको हमने जीकर देखा है। पढ़कर नहीं देखा जीकर देखा है। गीता जिस धर्म की, ज्ञान की, वैराग्य की और ऐश्वर्य की व्याख्या

करती है, गीता के अनुसार आप अपना जीवन बनाकर देखिए तो दुनिया का सारा वैभव आपके लिए कोई महत्वपूर्ण नहीं रहेगा। आपके न चाहते हुए दुनिया का सारा वैभव आपके पास रहेगा, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि गीता का जो ज्ञान है, यह काल्पनिक ज्ञान नहीं है, वह बौद्धिक व्यायाम नहीं है, वह प्रेक्टिकल है, क्रियात्मक ज्ञान है। गीता कहती है कि तुम इस ज्ञान को ग्रहण करके जीयो, तुम्हें यह मिल जाएगा। भगवान् की यह घोषणा है और इसीलिए भगवान् ने गीता में ज्ञान के सम्बन्ध में कहा कि इस ज्ञान से श्रेष्ठ दुनिया में पवित्र करने वाला और कुछ नहीं है -

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

(गीता 4/38)

मैं आप लोगों से निवेदन कर रहा था कि गीता का जो सिद्धान्त है, वह अपने आप में अनुपम है, अद्भुत है।

आप लोग जानते हो, मैंने उपनिषदों का अध्ययन किया है, दर्शनों का अध्ययन किया है। स्वदेशी दर्शनों का अध्ययन किया है, विदेशी दर्शनों का अध्ययन किया है और यह सब पढ़ने के पश्चात् मैं अब केवल गीता का आश्रय ले करके इसी में मग्न हूँ और मैं समझता हूँ कि इसमें इतना अथाह ज्ञान भरा हुआ है, सारा का सारा ज्ञान Practicable है you can put it into practice and you can enjoy you life. आप इसको अपने जीवन में Practical shape दे सकते हैं, क्रियात्मक रूप में इसे जी सकते हैं और आनन्द का अनुभव कर सकते हैं इसीलिए मैं कभी-कभी कहा करता हूँ कि भारतीय प्रचारक को केवल एक ग्रन्थ गीता हाथ में लेकर घूमना चाहिए। कोई भी वैज्ञानिक किसी भी प्रकार का आक्षेप आप पर नहीं कर सकता क्योंकि इसमें कर्मयोग तो है कर्मकाण्ड नहीं है। यह बात समझे आप ? कर्मकाण्ड और कर्मयोग में बड़ा अन्तर है। आप सब

लोग जानते हैं गीतोक्त धर्म पराश्रित नहीं है, स्वाश्रित है। मैं ऐसा मानता हूँ कि यह जो त्रयी धर्म का स्वरूप है, इससे बिल्कुल गीता का धर्म भिन्न है। भगवान् ने गीता के नवें अध्याय में यह बात बताई है-

एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते।

(गीता 9/21)

त्रयीधर्म का जो पालन करने वाले हैं उनकी यह गति होती है।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते॥

(गीता 9/20, 21)

दो ही श्लोकों में भगवान् ने त्रयीधर्म के विषय में बहुत कुछ बता दिया है लेकिन गीता का सिद्धान्त बिल्कुल उससे भिन्न है। गीता के अनुसार जीवन जीने के लिए आपको किसी मीडेयटर की जरूरत नहीं पड़ेगी। गीतोक्त यज्ञ करने के लिए किसी पुरोहित की जरूरत नहीं पड़ेगी, किसी पदार्थ की जरूरत नहीं पड़ेगी। जो साधन आपके पास है, उसी से यज्ञ कर लो। गीता कहती है तुम्हारे लिए सबसे श्रेष्ठ यज्ञ तो जप यज्ञ है। भगवान् कहते हैं यह मेरा अपना स्वरूप है।

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।

(गीता 10/25)

और उससे श्रेष्ठ भगवान् ने बताया -

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।

(गीता 4/33)

सम्पूर्ण यज्ञों की अपेक्षा ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि -

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥

(गीता 4/33)

गीता कर्मकाण्ड को प्रश्रय नहीं देती, बिल्कुल वैज्ञानिक ग्रन्थ है और 22 वर्ष हो गए हैं, दुनिया के अनेकों देशों में मैं गीता के सन्देश को लेकर घूम रहा हूं और अभी तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसने गीता के इस दिव्य सन्देश के ऊपर कहीं भी धब्बा लगाया। वैज्ञानिक ढंग से इसका मैं विश्लेषण करके लोगों को समझाता हूँ और मेरा यह मन्तव्य है कि गीता का जो आखिरी प्राप्तव्य है, वह ऐश्वर्य है, ईश्वरत्व की प्राप्ति है। ईश्वरत्व को प्राप्त करके ही व्यक्ति ऐश्वर्य से युक्त होता है। धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य- ये मनुष्य के प्राप्तव्य हैं। गीता ज्ञान के प्रकाश में, योग बुद्धि के प्रकाश में आप धर्म का आश्रय लें, धर्म के द्वारा चित्त शुद्ध करके ज्ञान की प्राप्ति होगी। ज्ञान के प्रकाश में प्रकृति के सम्पूर्ण वैभव से आप विरत हो जाएँगे। यह संक्षेप में गीता का सन्देश है। प्रत्येक मनुष्य की आन्तरिक चाह है कि उसे ईश्वरत्व की प्राप्ति हो जाए।

मैं हमेशा कहा करता हूँ कि जब शिष्य गुरु के पास जाता है तो वह शिष्य बनने नहीं जाता। क्या समझे? शिष्य गुरु के पास किसलिए जाता है? शिष्य बनने नहीं गुरु बनने। इसी रूप से मनुष्य जब भगवान् की आराधना करता है तो इन्सान बनने के लिए नहीं करता। किसके लिए करता है ? भगवान् बनने के लिए। इन्सान तो है ही वह। जीवात्मा तो वह पहले से ही है। जीव शिव की आराधना शिव बनने के लिए करता है, जीव बनने के लिए नहीं करता। यदि ईश्वर की आराधना करके जीव ही बनना

है तो उसे लाभ क्या हुआ ? यही तो भगवान् सातवें अध्याय में बता रहे हैं कि जो लोग मेरी आराधना न करके देवताओं की आराधना करते हैं, पितरों की आराधना करते हैं, यक्षों की आराधना करते हैं, भूत-प्रेतों की आराधना करते हैं, Indirectly तो मेरी ही आराधना है लेकिन वे बेचारे सही लाभ से वंचित रह जाते हैं क्योंकि जीवत्व से उनका उत्थान नहीं होता। जीव के जीव बने रहते हैं। इतनी आराधना करने के पश्चात् भी यदि जीव के जीव बने रहे, गुरु के पास वर्षों तक विद्या अध्ययन के पश्चात् यदि जिज्ञासु का जिज्ञासु बने रहे, शिष्य शिष्य ही बना रहे, उसमें गुरुत्व की प्रतिष्ठा न हो तो लाभ क्या हुआ ?

एक बार हमारे यहाँ एक सन्त आए। वह एक कहानी सुनाया करते थे। एक गुरु थे, उनके पास कुछ शिष्य आए पढ़ने के लिए। गुरुकुल में एक सत्र 12 वर्ष का होता था, जब बारह वर्ष पूरा हुआ तो एक शिष्य उनमें ऐसा था जो बारह वर्ष कोई प्रश्न नहीं किया। गुरु ने सोचा कि यह मेरा सच्चा शिष्य है। जो कुछ मैं पढ़ाता हूँ सब कुछ यह ग्रहण करता चला जाता है। गुरु जब सब को विदा करने लगे दीक्षान्त समारोह हुआ, उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा कि यद्यपि सारे शिष्य मुझे परम प्रिय हैं पर यह मेरा शिष्य इतना बहादुर है कि इतने वर्षों में इसने एक भी प्रश्न मेरे से नहीं किया और जो कुछ मैं बोलता गया सब इसने ग्रहण कर लिया। इतने में वह शिष्य थोड़ा आगे आ गया कहा, गुरुदेव! ऐसी बात नहीं। पूछा, बात क्या है फिर ? कहा, बात यह है गुरुदेव कि जब मैं पहले दिन आया था आपके पास पढ़ने तो उस समय आपने एक श्लोक कहा था और मुझे बारह वर्ष हो गये उसी श्लोक का चिन्तन करते हुए और मेरा समाधान नहीं हुआ अभी तक। गुरुदेव आश्चर्य में पड़ गए। कहा, वह कौन सा श्लोक था भाई ? जो इतनी बात समझ में नहीं आई ? कहा, आप ने एक श्लोक कहा था -

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

बोले, इसमें कौन सी ऐसी बात है जिसमें तू उलझा हुआ है ? कहा, आपने कहा था कि "सर्वोपनिषदों गावो " सारी उपनिषदें जो हैं वे गाए हैं - सारी उपनिषदों के साथ बहुवचन लग गया, यह बात तो समझ में आ गई लेकिन आपने कहा कि "दोग्धा गोपालनन्दनः" गोपाल नन्दन तो एकवचन है और गधा आपने दो बताया। गधा दो हैं और गोपालनन्दन एक है। एक गधा तो गोपालनन्दन हुआ, दूसरा कौन गधा है, यह मुझे नहीं पता लगा। गुरु जी ने कहा वह दूसरा गधा और कोई नहीं वह मैं ही हूँ। बारह वर्ष तक तुम यही समझते रहे? "दोग्धा गोपालनन्दनः" का अर्थ होता है- दूध दुहने वाला गोपालनन्दन और तूने दोग्धा का अर्थ लिया दो गधा ? वह दो गधा कोई नहीं है-एक तू है दूसरा मैं हूँ।

मेरे कहने का अभिप्राय है कि जैसे वह गुरु के सामने गीता का मूल संदेश रखा, यदि वैसे ही कहने वाला और सुनने वाला हो, फिर तो उससे कोई लाभ नहीं लेकिन गीता यह बड़े दावे के साथ कहती है

इदं ज्ञानं उपाश्रित्यममसा धर्ममागताः।

इस ज्ञान का यदि तुम यथार्थ रूप से आश्रय ले लो तो तुम मेरे धर्म को प्राप्त कर जाओगे। सम्पूर्ण प्राणियों की चाह है जीवत्व से मुक्त हो करके ईश्वरत्व को प्राप्त करना। गीता के प्रकाश में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा आप में हो जाएगी, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। इसका ही भगवान् ने गीता में सन्देश दिया है।

इन पांच दिन के कार्यक्रम में मैंने आप लोगों को पहले गीता का वैशिष्टय, उसकी अनुपमेयता वा अपूर्वता और चार दिनों में आप को धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इसकी व्याख्या करके समझाई है। इसी के साथ आज का यह कार्यक्रम यहीं समाप्त होता है। हमने यह निश्चय किया है कि हिन्दू विचारधारा को यदि दुनिया में प्रतिष्ठित करना है तो इससे उत्तम कोई

साधन नहीं हैं। मैं कई बार लोगों से कहता हूँ कि दुनिया के सामने खड़े होने के लिए तुम्हारे पास अध्यात्म विद्या के सिवा और कुछ नहीं है जिस पर तुम गौरव के साथ दुनिया के सामने खड़े हो सको। देश के नेताओं ने कोई देश ऐसा नहीं छोड़ा जिससे भीख न माँगी हो इसलिए आर्थिक स्थिति में तो तुम्हारी दरिद्रता का डंका सारी दुनिया में पिट गया है। भारत के साथ ही चाईना एक वर्ष बाद आज़ाद हुआ था लेकिन चीन ने किसी से भीख नहीं माँगी। भारत से सवा गुणा उसकी आबादी अधिक है और भारत के समान प्राकृतिक सम्पत्ति उसके पास नहीं है। जितनी उपजाऊ भूमि आपके पास है, उतनी उसके पास नहीं है लेकिन उसने दुनिया में किसी भी देश के सामने हाथ नहीं फैलाया, भिखारी नहीं बना। अपने स्वाभिमान को उसने सुरक्षित रखा इसलिए विदेशों में मैं देखता हूँ कि भारतियों की अपेक्षा चीनियों की बड़ी इज्जत है। दिल्ली में, बम्बई में बड़ी-2 विल्डिंगे हैं उनके चित्र विदेशों में नहीं हैं लेकिन जहाँ झोपड़ी में लोग रहते हैं, गन्दी नालियाँ बह रही हैं वहाँ की वीडिया कैसेट बना करके विदेशों में टेलीविज़न पर दिखाया जाता है। कभी-2 देख करके बड़ी व्यथा होती है और कभी विरोध में हम टेलीविजन वालों को कहते भी हैं कि क्या तुम्हारे पास यही है भारत का दृश्य दिखाने को। ऐसे दृश्य तो हरेक देश में मिल जाएंगे लेकिन यहां के लोग ऐसे दृश्य विदेशों में दिखा करके उनसे पैसा मांगते हैं कि इनके कल्याण के लिए आप हमारी मदद करो। उन गरीबों के नाम पर पैसा ले करके आते हैं और यहाँ ऐश करते हैं। कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसके बल पर दुनिया के सामने तुम गौरव के साथ खड़े हो सको। केवल तुम्हारे पास एक निधि है- अध्यात्म। हम दुनिया के सामने गौरव के साथ खड़े होते हैं। दुनिया के धर्मों के लोग जहाँ इक्टठा होते हैं, उनके बीच गौरव से जो उद्घोषणा करते हैं, वह केवल अपने अध्यात्म बल पर। हमारे पास ऐसी अद्भुत निधि है जो दुनिया में किसी के पास नहीं मिलेगी

इसलिए हमें इस पर गौरव है और इसी के बल पर दुनिया में हमारी प्रतिष्ठा है। दुनिया हमें मानती है, हमें प्यार करती है- केवल इसके नाते। जिस अध्यात्म के बल पर विश्व में हमारा गौरव है, प्रतिष्ठा है, आदर है, वह अध्यात्म विद्या हम चाहते हैं कि दुनिया के प्रत्येक प्राणी तक पहुँच जाए और उस कोशिश में मेरे बहुत से शिष्य हैं, जो इस समय सहयोगी हैं। हमारे प्रचार करने वाले देश-विदेश, भारत के करीब इस समय 25 विद्वान् शिष्य हैं, उन्होंने अच्छी साधनाएँ की हैं और इस काम में लगे हुए हैं। हम चाहते हैं कि इसका प्रचार और प्रसार अधिक से अधिक मात्रा में अपने देशवासियों में हो क्योंकि धर्म के नाम पर जितनी भ्रान्तियाँ दिनों-दिन भारत में फैलती जा रही हैं, उसको देख करके मन में बड़ी व्यथा होती है। मेरी चाह है कि अपने देश में भी गीता के दिव्य ज्ञान का विशेष रूप से प्रचार और प्रसार हो। यह एक व्यक्ति की बात नहीं है। उसके लिए बहुत बड़ी टीम की जरूरत है। बहुत बड़े संगठन की जरूरत है। भगवान् की इच्छा हुई तो इस तरफ भी वह प्रेरणा देगा लोगों को और लोग इस संगठन के साथ जुड़ते हुए इस कार्य को आगे बढ़ाएंगे। मेरी यही अभिप्सा है, आन्तरिक चाह यही है कि भारतीय अध्यात्म विज्ञान का जो वैभव है, दुनिया इससे परिचित हो जाए और दुनिया तक वह पहुँच जाए। हमारी बात वे इसलिए नहीं सुनते कि हम महात्मा हैं वा हमारी बात वे सुनेंगे तो उनको पुण्य लाभ होगा। हमारी बात वे इसलिए सुनते हैं कि यह दार्शनिक हैं यानी He is not only philosopher but Yogi too. He is master of wisdom. Whatever he is saying that is very beneficial for us. Due to that they are liking and following me. केवल इस नाते कि यह जो कह रहे हैं, यह वैज्ञानिक सत्य है। अध्यात्म की ऐसी व्याख्या विज्ञान के प्रकाश में हमने नहीं सुनी, यही कहते हैं लोग विदेशो में। भारत में वैसी स्थिति नहीं है क्योंकि भारत में विज्ञान का अभी उतना प्रकाश नहीं

हुआ है . इसलिए भारत के लोग तो श्रद्धा से बात सुनते हैं। विश्वास है, श्रद्धा है, महात्मा गीता पर बोल रहे हैं, चलो हम भी सुन लें। यह उनकी धारणा है और उससे कितना वह लाभ ले पाते हैं, यह तो भगवान् जानें या आप लोग जानो। मैं आप लोगों से कह रहा था कि आप लोग जो बातें यहाँ सुने हो पाँच दिन में, उसको अपने तक सीमित न रखों, इसको आप दूसरों तक पहुँचाओ। इस वैज्ञानिक विश्लेषण को चित्त में धारण करके, जहाँ आप हो, वहीं से इसके प्रचार और प्रसार का प्रयत्न करोगे तो इससे समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग लाभान्वित होगा। हरेक व्यक्ति का इसमें सहयोग अपेक्षित है। तभी यह कार्य सार्थकता को प्राप्त होगा, अन्यथा नहीं। आप लोगों के प्रति मैं अनन्त मंगल कामनाएँ व्यक्त करता हूँ और मेरा बहुत-2 आशीर्वाद। करुणानिधान भगवान् आपको धर्मबुद्धि प्रदान करें और उस धर्मबुद्धि के प्रकाश में आप अपने जीवन को सार्थक बनावें। इसी मंगल कामना के साथ मैं अपने विचारों को विश्राम देता हूँ। फिर कभी मिलेंगे तो फिर चर्चा करेंगे। अब प्रार्थना करें।

ॐ भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धीयो यो नः प्रचोदयात्।
सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चिद् दुःख भागभवेत्।
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।
॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सम्पर्क सूत्र

ब्रह्मर्षि आश्रम
विराट् नगर् पिंजौर (हरियाणा)
पिन- 134102
फोन :-01733-266170

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
28-बी, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
फोन :-011-22821660,22821943

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
माधोपुरी, गऊशाला रोड़, लुधियाना
फोन :-0161-2700141,270631

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
बेअन्तपुरा, चण्डीगढ़ रोड़, लुधियाना
फोन :-0161-2226406

ब्रह्मर्षि बावरा शान्ति विद्यापीठ
दीनानगर, धार रोड़, उधमपुर (जे.के.)
फोन :-01992-271080

ब्रह्मर्षि प्राकृतिक चिकित्सालय योग आश्रम
पुरी फार्म्स, जोड़ियां, रादौर रोड़, यमुनानगर-135001(हरियाणा)
फोनः- 01732-297046

ब्रह्मर्षि बावरा विद्या मन्दिर
चककिशुनदास, ज्ञानपुर, भदोही, वाराणसी (उ०प्र०)

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
न्यू बाईपास, ऋषिकेश रोड़, भूपतवाला, हरिद्वार (उ० प्र०)
फोनः-0133-261018

Metaphysical Science Research Institute
Sec.19-A, Chandigarh
Phone : 0172-2725390

Brahmrishi Mission School
Jarar, Devvan, Piplaage
Bhunter, Kullu (H.P.)
Ph. 01902-265518,266043

Brahmrishi Mission School
Hanumangarh Road,
Opp. New Water Works,
ABOHAR-152116
Ph. : 01634-229615, 329615

Brahmrishi Misson
278, Heston Road, Heston
Middlesex TW5 ORT U.K.
Phone : 0208-571-3879

Brahmriahi Mission CANADA
Shri-Ram-Dham Hindu Temple
525 Bridge Street,
East Kitchener, Ontario
CANADA N2K3C5
Phone : (519) 579-1486

Brahmrishi Ashram
1246, North Mantua Street, Kent,
Ohio- 44240, U.S.A..
Phone : 330-678-3793

Brahmrishi Ashram
717, Loosduinseweg,
2571 AM-Denhaag, Nederland,
Ph.: 070-3620961

हमारे प्रकाशन

(1) शक्ति तत्त्व बोध (2) आपकी अपनी बात (3) गीता ज्ञान विज्ञान योग

(4) श्रीहनुमत् विनय पच्चीसी (5) श्री चण्डिकाशतक (6) श्री श्यामशतक

(7) मानस में धर्मरथ (8) रामो विग्रहवान् धर्मः (9) मानस महाकाव्य में नारी

(10) गीता तत्त्व बोध (11) क्या वर्ण-व्यवस्था अभिशाप है? (12) राम नाम महिमा

(13) मानस के मोती (14) जीवन विज्ञान (15) भारत की आत्मा (16) योगांकुर

(17) साधना सूत्र (18) गीता कर्म विज्ञान (19) समाधान (20) तत्त्व चिन्तन

(21) सन्त सन्देश (22) भक्ति दर्शन (नारद भक्ति सूत्र) (23) राम और रामायण

(24) क्रियायोग (25) मानव पतन में हेतु (26) योग पथ

(27) विश्व को हिन्दुओं का योगदान (28) मानस में वैदिक सिद्धान्त (29) सन्त लक्षण

(30) श्री हनुमत हृदय (31) संस्कृत भाषा का महत्व

(32) ब्रह्म और उसकी विशिष्टाभिव्यक्ति

(33) सहज समाधि भली (34) ब्रह्मविद्या विज्ञान-प्रथम

(35) ब्रह्मविद्या विज्ञान—द्वितीय

(36) नारी! तुलसी की दृष्टि में (37) शिव तत्त्व बोध

(38) विश्व की समस्याओं का हल-अध्यात्मवाद (39) हिन्दू धर्म सूत्र

(40) गीता प्रतिपादित योग मार्ग (गीता अध्याय छः पर आधारित)

(41) गीतोक्त बुद्धियोग (42) चंडी दी वार (भगवती की स्तुति) (43) काव्य सुधा

(44) श्री शिव शतक (45) मानस में नवधा भक्ति (46) महात्मा भरत

(47) हनुमत पंच रत्न (48) श्रीमद्भगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय 1 एवं 2)

(49) श्रीमद्भगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय 3 एवं 4)

(50) श्रीमद्भगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय 5 एवं 6)

(51) श्रीमद्भगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय 7 एवं 8)

(52) श्रीमद्भगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय 9 एवं 10)

(53) वैदिक सनातन धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या

(54) राष्ट्र का मुखिया कौन ? (वज्रसूचिकोपनिषद् के आधार पर तात्त्विक विश्लेषण)

(55) शास्त्र और श्रद्धा (एक तात्त्विक विश्लेषण) (56) जन्म से मोक्ष तक

(57) वैदिक विज्ञान के स्वर्णिम अध्याय (58) भुशुण्डी गीता

(59) श्रीहनुमत् चरित्र (60) श्रीगणेश-तत्त्व-प्रश्नोत्तरी

(61) ध्यान प्रक्रिया एवं साधना प्रशिक्षण (62) जन जागृति महाभियान

(63) गीतापंच प्रवचन प्रसरणि

(64) Science of Stable Wisdom

(65) The Science of *Pranav (om)*

(Commentary on Mandookyopanishad)

(66) How to be a Yogi (67) Towards Divinity

(68) Yoga for life (69) The Hindu & its way of life

(70) Essence of the Gita (71) Basic Principles of Yoga

(72) Essays on the Karm Yoga

(73) Lord Hanuman-Our Ideal

(74) Meditation Technique

(75) Science of the Absolute Knowledge

(76) The Nature of Sacrifice

(Commentary on Ishopanishad)

(77) Tattva Samass

(78) World's Problems Their Solution

(79) Peace Through Spiritual Discipline

(80) Hindu Millenium Celebrations In U.K.

दिव्यालोक मासिक पत्रिका

सद्विचारों के प्रचार और प्रसार की मासिक पत्रिका

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥(1)

गीता का योगी एवं संन्यासी बड़ा विलक्षण संन्यासी है। गीता के संन्यासी द्वारा भगवान् ने मानव मात्र के लिए एक ऐसा राजपथ प्रस्तुत किया है जिस पर चलकर के प्रत्येक श्रेणी का मानव परम कल्याण का भागी हो सकता है। गीता का संन्यासी अग्नि और कर्म त्याग करने वाला संन्यासी नहीं अपितु कर्म फल त्याग करने वाला है। गीता काम्य कर्मों का निराकरण करते हुए कार्य कर्मों के लिए मनुष्य को प्रेरणा प्रदान करती है। व्यक्तिगत स्वार्थ की दृष्टि से किया हुआ कर्म काम्य कर्म होता है और लोक कल्याण की दृष्टि से किया हुआ कर्म कार्य कर्म होता है।

ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट् नगर, पिंजौर (हरियाणा)
फोन : 01733-266170